अगस्त, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Cover ii

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग, प्रभारी वि.सा.प्र.

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन, विधि
संकाय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2019 अंक - 8

प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक

अविनाश शुक्ला

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

(2019) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on

Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमिशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, उसका प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से मैं आपका ध्यान भारत के संविधान और उसके अंतर्गत अधिनियमित विधानों द्वारा हिंदी को देवनागरी लिपि में राजभाषा के रूप में प्रयोग किए जाने के प्रयोजनार्थ किए गए प्रबंधन की ओर आकर्षित करना चाहता हूं ।

हमारा संविधान तारीख 26 जनवरी, 1950 को प्रभाव में आया । इसके अनुच्छेद 343 के खंड (i) के अधीन यह उपबंधित किया गया कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी । इसी अनुच्छेद के खंड (2) में यह उपबंधित किया गया कि संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिनके लिए उसका प्रयोग संविधान के प्रभाव के ठीक पहले किया जा रहा था, परंतु राष्ट्रपति महोदय उक्त 15 वर्ष की अवधि के दौरान भी आदेश द्वारा संघ के शासकीय कार्यों के प्रयोजनार्थ अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का प्रयोग भी प्राधिकृत कर सकेंगे । इसी अनुच्छेद के खंड (3) में यह उपबंधित किया गया है कि संसद् उक्त 15 वर्ष की अवधि के पश्चात् अंग्रेजी भाषा का प्रयोग विधि द्वारा ऐसे प्रयोजनों के लिए उपबंधित कर सकेगी, जो विधि में निर्दिष्ट किए जाएं । संविधान के प्रभाव में आने के पश्चात् 15 वर्ष की अवधि तारीख 25 जनवरी, 1965 को समाप्त हो चुकी है और 16वां वर्ष तारीख 26 जनवरी, 1965 से आरंभ हो चुका है । संसद् द्वारा पहले ही अनुच्छेद 343(1) के प्रावधानों के अनुपालन में राजभाषा अधिनियम, 1963

(1963 का 19) अधिनियमित किया जा चुका है, जो तारीख 10 मई, 1965 को प्रभावी हो चुका है । इस अधिनियम की धारा 7 उच्च न्यायालयों में पारित होने वाले निर्णयों में हिंदी या अन्य राजभाषाओं के वैकल्पिक प्रयोग के बाबत उपबंधित करती है । इस धारा के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से नियत दिन अर्थात् तारीख 26 जनवरी, 1965 से ही या उसके पश्चात् किसी भी दिन से अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा । धारा 7 को भी तारीख 26 फरवरी, 1970 की अधिसूचना सं. एस.ओ. 841 द्वारा तारीख 7 मार्च, 1970 से प्रभावी किया जा चुका है । इस धारा के अधीन उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान स्थित इलाहाबाद, जबलपुर, पटना और जोधपुर उच्च न्यायालयों में निर्णय, डिक्री या आदेश के लिए हिंदी का प्रयोग प्राधिकृत किया जा चुका है । इन उच्च न्यायालयों द्वारा हिंदी में दिए गए निर्णय, डिक्री या आदेश को प्राधिकृत और अधिप्रमाणित माना जाएगा । उपरोक्त ज्ञापन के अंतर्गत यह सांविधिक अपेक्षा भी है कि ऐसे निर्णयों के साथ अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी संलग्न किया जाएगा और इससे हिंदी में दिए गए निर्णय, डिक्री या आदेश का प्राधिकृत या अधिप्रमाणित स्वरूप समाप्त नहीं होगा ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2019

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

कृष्णा यादव **बनाम** बिहार राज्य और अन्य	147

संसद् के अधिनियम

माल-विक्रय अधिनियम, 1930 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 - 30

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 351, 343, 344, 348 और 349 [सपठित संविधान, 1950 की अनुसूची 7 की मद सं. 10, राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 2(ख), 3, 4, 5 और 7 और कैबिनेट (राजभाषा) सचिवालय द्वारा अनुच्छेद 348(2) और राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 के अधीन तारीख 9 मई, 1972 को जारी की गई अधिसूचना] – पटना उच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन फाइल की जाने वाली किसी याचिका या किसी कर निदेश की भाषा – अंग्रेजी या हिंदी – याचिका या आवेदन हिंदी में फाइल की जा सकती है किंतु इसके साथ अंग्रेजी पाठ भी संलग्न होगा जो सभी विधिक प्रयोजनों के लिए, जहां तक अधिसूचना का संबंध है, प्राधिकृत पाठ होगा ।

कृष्णा यादव बनाम **बिहार राज्य और अन्य** 147

कृष्णा यादव

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(2015 की दांडिक रिट याचिका संख्या 435)

तारीख 30 अप्रैल, 2019

मुख्य न्यायमूर्ति अमरेश्वर प्रताप सिंह, न्यायमूर्ति आशुतोष कुमार और न्यायमूर्ति राजीव रंजन प्रसाद

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 351, 343, 344, 348 और 349 [सपठित संविधान, 1950 की अनुसूची 7 की मद सं. 10, राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 2(ख), 3, 4, 5 और 7 और कैबिनेट (राजभाषा) सचिवालय द्वारा अनुच्छेद 348(2) और राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 के अधीन तारीख 9 मई, 1972 को जारी की गई अधिसूचना] – पटना उच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन फाइल की जाने वाली किसी याचिका या किसी कर निदेश की भाषा – अंग्रेजी या हिंदी – याचिका या आवेदन हिंदी में फाइल की जा सकती है किंतु इसके साथ अंग्रेजी पाठ भी संलग्न होगा जो सभी विधिक प्रयोजनों के लिए, जहां तक अधिसूचना का संबंध है, प्राधिकृत पाठ होगा ।

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन प्रस्तुत की गई यह याचिका न्यायिक अभिरक्षा से याची को निर्मुक्त किए जाने हेतु बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल की गई है । रिट याचिका हिंदी देवनागरी लिपि में प्रारूपित की गई है, जिस विवाद्यक का समाधान पूर्ण न्यायपीठ द्वारा किए जाने के लिए निर्दिष्ट किया गया । तद्नुसार, वर्तमान पूर्ण न्यायपीठ का गठन किया गया किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि मामले पर तुरंत विचार नहीं किया जा सका और अंततः

मामले को मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत किया गया और तारीख 3 जनवरी, 2019 को नया नामांकन किया गया । इस न्यायपीठ ने तारीख 24 जनवरी, 2019 को मामले को सुना जिसके पश्चात् निर्णय के लिए सुरक्षित किया गया । न्यायालयों में हिंदी भाषा को प्रोत्साहित किए जाने के लिए दिलचस्पी और मुकदमेबाजी में अंतर्वलित सामान्य व्यक्ति से उच्चतम प्रतिष्ठा वाले व्यक्तियों तक के मामलों में तथा और विधि को समझे जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालयों की अभिव्यक्तियों की अभिव्यक्तिशील भाषा वह गुंजायमान विवाद्यक है जिसको अत्यधिक समय पहले वर्ष 1972 में बिहार राज्य द्वारा प्रख्यापित अधिसूचना के संवैधानिक निर्वचन के संबंध में वर्तमान न्यायपीठ के समक्ष उठाया गया है । अभिव्यक्ति की भाषा का सामान्य प्रयोग और उसके मार्ग में आने वाले अवरोध तब तितर-बितर हो जाते हैं जब कोई सामान्य नागरिक सड़क या रेल मार्ग द्वारा देश के उत्तरी भाग से दक्षिणी भाग की ओर यात्रा करता है और अपने गंतव्य स्थान पर सुविधापूर्वक पहुंच जाता है । यह एक प्रकार से विभिन्न क्षेत्रों की सामान्य अभिव्यक्तिशील भाषाओं का सदृशीकरण है जो किसी जन सामान्य के लिए इस बात को सुकर बनाता है कि वह इस विशाल राष्ट्र की अपनी तीर्थयात्रा किसी श्रद्धालु अनुयायी की भांति या किसी यात्री के रूप में या किसी पेशेवर साहसिक कार्य करने वाले के रूप में पूर्ण कर सके । इस प्रकार, इस विशाल देश में समस्त दिशाओं में अभिव्यक्ति के विलक्षण सम्मिश्रण ने अभिव्यक्तिशील कौशल की समानता को प्रोन्नत किया है । आज के विशेषज्ञता वाले पेशेवर विश्व में विधि व्यवसायी और मुकदमेबाज यह प्रत्याक्षा करते हैं कि उनकी शंकाओं और अभिव्यक्तियों को विधि के किसी न्यायालय के समक्ष ऐसी भाषा में प्रभावी विचारों के माध्यम से आगे बढ़ाया जाए और संप्रेक्षित किया जाए जो संप्रेक्षण की द्विवचनता और समझ की स्पष्टता को पूर्णता प्रदान करने वाला हो । किसी मानवीय अभिव्यक्ति की बुद्धिमानी उस संप्रेक्षण से उत्पन्न होती है जो विचारों द्वारा प्रज्वलित होती हो, चाहे उसकी संसूचना के लिए प्रयोग की गई भाषा कुछ भी हो । किसी भी व्यक्ति की रुचि की भाषा में अभिव्यक्ति की यह स्वतंत्रता संविधान में प्रतिष्ठापित है । उच्च न्यायालय में देवनागरी लिपि में हिंदी के प्रयोग का विकास, उसकी

स्वीकार्यता और सुविधानुसार प्रयोग के बारे में यह शंका व्यक्त की जाती रही है, जिस कारणवश हमसे संवैधानिक उपबंधों और उच्च न्यायालय के नियमों के प्रकाश में इस कार्य में अंतर्वलित होना अपेक्षित है । अतः इस बाबत एक अदृश्य अनिवार्यता है, जो न्यायालयों समेत समस्त सरकारी क्षेत्रों में विधिक क्षेत्र में वैश्विक प्रभाव के परिणामस्वरूप अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को प्रभावी रखे जाने के लिए आज भी जारी है । मेरे विचार से इस संबंध में संतुलन स्थापित किए जाने और समस्या पर इस दृष्टिकोण से विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ व्यावहारिक समाधान पर पहुंचने के लिए यह एक समुचित उपाय होगा । निदेश का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित (बहुमत द्वारा) – मेरी सुविचारित राय में, यह अर्थ निकालना उचित नहीं होगा कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में देवनागरी लिपि में हिन्दी का प्रयोग करने का प्रतिषेध नहीं है । अधिसूचना में केवल यह उल्लेख नहीं है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाएं और कर प्रतिनिर्देश 'केवल' अंग्रेजी में प्रस्तुत किया जाएगा । यह व्यक्ततः अंग्रेजी का अपवर्जन करते हुए हिन्दी के प्रयोग का प्रतिषेध नहीं करता । वादकारी हिन्दी में अपना अभिवचन प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र है किन्तु इसका प्राधिकृत पाठ अधिसूचना में उपबंध के विस्तार तक अंग्रेजी में होना चाहिए । यह प्रक्रिया का विषय है जहां वैसी ही अधिसूचना **मधुलिमये** वाले मामले के अनुसार हिन्दी में दिए गए मौखिक बहस को निवारित नहीं करती । यहां प्रश्न किसी भाषा की संप्रभुता के विरोध का नहीं है बल्कि लिखित याचिकाओं के कतिपय वर्गों में न्यायालय की भाषा के प्रयोग के रूप में इसकी व्यवहार्यता और प्रयोजन से है । इस दृष्टिकोण से, संवैधानिक अधिदेश का निर्वचन हमेशा राजभाषा के रूप में हिन्दी को माने जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता है । न्यायालयिक कार्यवाहियों के लिए व्यवहार्यतः हिन्दी समानांतर भाषा है और पटना उच्च न्यायालय में बोली भी जाती है । हिन्दी में मौखिक निवेदन किए जाने के बाबत कोई कानूनी या संवैधानिक अड़चन नहीं हैं । इस प्रकार, हिन्दी कोई अनुकल्पी भाषा नहीं है बल्कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में अन्तर्विष्ट सीमा के अधीन रहते हुए न्यायालय कार्यवाहियों में प्रयोगकर्ता के विशेषाधिकार पर चयनित विकल्प के रूप में उपलब्ध भाषा है ।

परिसीमा का यह आदेश वर्ष 1972 का है और लगभग अर्धशताब्दी से अधिक समय के पश्चात् यह अंग्रेजी में रिट याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों को प्रस्तुत करने में अंग्रेजी के प्रयोग के साथ न्यायालयिक कार्यवाहियों में बिना किसी व्यवहारिक असुविधा के बाधा उत्पन्न करता है । यह वांछा कि हिन्दी के ऐसे प्रयोग का अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए, चिन्ता का विषय हो सकता है किन्तु यहां पर दो पहलुओं पर स्पष्टतः विचार किया जाना चाहिए । पहला है विधि के छात्रों के लिए यथाविहित शिक्षा का माध्यम । मैंने पहले ही भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम की दूसरी अनुसूची को निर्दिष्ट किया है जिसमें यह उपबंध हैं कि विधि विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रमों की बाबत शिक्षा का माध्यम अनन्यतः अंग्रेजी होना चाहिए । अतः, यह स्पष्टतः यह आधार प्रदान करता है कि प्राथमिकतः अंग्रेजी भाषा का प्रयोग न केवल इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, बल्कि आज के संदर्भ में अंग्रेजी भाषा के वैश्विक प्रभाव के कारण भी विधि का ज्ञान लेने वालों को प्रशिक्षण देने के लिए किया जा रहा है, जब सम्पूर्ण विश्व की विधियां, अन्तरराष्ट्रीय विधि, वाणिज्यिक विधि सहित पाठ्यक्रमों में निर्दिष्ट की जा रही हैं और हिन्दी देवनागरी लिपि में इस व्यापक वैश्विक जानकारी का अनुवाद निकट भविष्य में संभव नहीं हो सकता न ही ऐसा प्रभावी अनुवाद इस विस्तार तक उपलब्ध है जैसा कि हिन्दी देवनागरी लिपि में विधि की जानकारी लेने वाले लोगों के प्रशिक्षण के लिए अपेक्षित है । अंग्रेजी विधान, संविदा दस्तावेज, सेवा-नियम, प्राण और दैहिक स्वतंत्रता तथा नियोजन से संबंधित विधि, पर्यावरण से संबंधित विधि और इसी तरह के पाठ्यक्रम के व्यापक क्षेत्र को शैक्षिक संस्थाओं या न्यायालयों में प्रयोग के प्रयोजनार्थ रातों रात सटीक रूप से अनुवाद नहीं किया जा सकता । अतः, इसका अभिवचनों विशेषकर रिट याचिकाओं के प्रारूपण पर सीधा प्रभाव होगा जो सभी न्यायालयों में भारी मात्रा में प्रस्तुत होते हैं । अतः, हिन्दी में शिक्षा के माध्यम का आदेश भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम में सावधानीपूर्वक सम्मिलित किया गया प्रतीत होता है जिसकी हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए उपेक्षा नहीं की जा सकती जो निश्चित रूप से पूरी की जाने वाली संवैधानिक आकांक्षाओं में से एक है । दूसरा कारण यह है कि हमारे देश में भिन्न-भिन्न भाषाएं हैं और आज के संदर्भ में अधिवक्ता सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायालयों को

संबोधित करने और उनकी सहायता करने के लिए दूर-दूर तक यात्रा करते हैं जो अनिवार्यतः अंग्रेजी भाषा में आजकल अभिव्यक्ति का माध्यम है । अतः, वे वादकारियों की समस्याओं की अधिक सुविधाजनक रूप से अभिव्यक्ति अंग्रेजी भाषा में याचिकाओं का अभिवचन और प्रस्तुतीकरण भी कर सकती है । ऐसे राज्य में मामले में फंसने की ऐसे वादकारी की संभावना है जहां भाषा पूर्णतः भिन्न है अतः, यह न केवल वादकारी के लिए बल्कि अधिवक्ता और न्यायालय के लिए भी भिन्न बनाता है । यदि याचिकाओं के प्रतिलेखन के समय हिन्दी भाषा के प्रयोग पर अधिक जोर दिया जाता है किन्तु वहीं यदि याचिकाएं हिन्दी देवनागरी लिपि में फाइल की जाती हैं और जिसपर न्यायालय द्वारा विचार किया जाना हो तो इसके लिए उसके अनुवाद की अपेक्षा होगी तो उस सीमा तक यह उपबंध किया जा सकता है कि किसी याचिका या कर प्रतिनिर्देश को हिन्दी में पेश किए जाने की दशा में इसके साथ अंग्रेजी भाषा में इसका प्राधिकृत पाठ भी संलग्न होना चाहिए क्योंकि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना के अनुसार वह शासकीय मान्यताप्राप्त भाषा होगी । बिनय कुमार सिंह वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा किए गए निर्णय के अनुसार, अधिसूचना न तो असंवैधानिक है और न ही इस न्यायालय द्वारा पढ़े जाने के कारण किसी खामी से ग्रस्त होना कहा जा सकता है । न तो वादकारी या किसी अधिवक्ता के किसी विधिक अधिकार का अतिलंघन होता है न ही मूल अधिकार का कोई अतिलंघन होता है जो हमेशा संविधान के अधीन अनुज्ञेय युक्तियुक्त निर्बंधनों के अधीन हैं । आक्षेपित अधिसूचना अभी भी विधि की उक्त परिधि के भीतर है । वादकारी या अधिवक्ता इस न्यायालय के समक्ष न्यायिक पुनर्विलोकन का अपना अधिकार नहीं खोते जो किसी भी रीति में जोखिमग्रस्त नहीं है और यदि कतई कोई वादकारी अपनी शिकायत करने के लिए किसी विशिष्ट भाषा के प्रयोग से उद्भूत ऐसी किसी समस्या की ईप्सा करता है तो किसी वादकारी को ऐसी सहायता के लिए स्वयं उच्च न्यायालय की कानूनी सहायता सेवा प्राधिकरण की उसकी शाखा के साथ इसका पूर्ण तंत्र है । एक अन्य आयाम जो सम्पूर्ण देश के अधीनस्थ न्यायालयों या उच्चतर न्यायपालिका में न्याय प्रशासन के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण कारक है विधि के स्रोत अर्थात् पूर्व निर्णयों के रूप में उपलब्ध भारी संख्या में ऐसी सामग्री की विद्‌यमानता है । भारत में

सर्वोत्तम विधि पत्रिकाएं जो पहले और आजकल प्रकाशित हो रही हैं, सभी अंग्रेजी में हैं । विख्यात लेखकों या विधिशास्त्र के विद्वानों द्वारा विधि की लगभग सभी शाखाओं के प्राधिकृत पाठ सभी अंग्रेजी में हैं । इस न्यायालय के लिए यह पूर्वघोषित करना संभव नहीं होगा कि कब और कैसे यह सम्पूर्ण सामग्री ऐसे लोग जो अभिवचन में हिन्दी भाषा के आरम्भ के लिए आंदोलन कर रहे हैं, और जो सामान्यतः और काफी हद तक अधिवक्ताओं और विधि विशेषज्ञों द्वारा न कि व्यक्तियों द्वारा प्रारूपण किया जाता है, के उपयोग और समझ के लिए हिन्दी देवनागरी लिपि में अनुवादित हो पाएगी । इस समय, पूर्व-निर्णय के रूप में विधि का काफी स्रोत भी चिन्ताजनक विषयों में से एक है क्योंकि यह विधिक शिक्षा और सतत् विधिक शिक्षा दोनों का सारवान् आधार गठित करता है । इस प्रकार, न्याय की प्राप्ति हेतु अंग्रेजी की सामग्री के उपयोग को रातों रात प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता जो उन लोगों के लिए व्यापक चिंता का विषय होना चाहिए जो सम्पूर्ण देश में न्यायपालिका के सभी स्तरों पर हिन्दी के प्रयोग के संवैधानिक निर्देश के प्रवर्तन की ईप्सा करते हैं । अतः, यह मुद्दा राष्ट्र के हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह, विशेषकर न्याय प्रशासन के मामले में सम्पूर्ण राष्ट्र को समाविष्ट करता है । किसी भी व्यक्ति को नहीं भूलना चाहिए यह राष्ट्र ऐसे डिजाइन में बुना हुआ एक सुन्दर गलीचे की तरह है जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र को एक ऐसे धागे में कड़ाई से बांधकर बुने गए भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक निरूपण की भाषाएं हैं । इसलिए, न्यायपालिका के शासकीय विषयों में हिन्दी देवनागरी लिपि के प्रयोग को न्यायोचित ठहराने के लिए राष्ट्र के एकीकृत मूलभूत दर्शन को उसी दक्षता के साथ मिश्रित किया जाना चाहिए जिस तरह अधिरोपण की भावना के बिना राष्ट्र को एकीकृत रखा गया था किन्तु, वहीं राष्ट्रीय एकीकृत सांस्कृतिक समाज के संवैधानिक लक्ष्य के प्रति उचित ईमानदारीपूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए । मेरी राय में, यह एकीकृत राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा को विवक्षित किए बिना न्याय के सामान्य प्रशासन के उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा । हिन्दी या अंग्रेजी को अकेली भाषा के रूप में समझना संवैधानिक अधिदेश होना प्रतीत नहीं होता और यह इस मत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 348 को गढ़ा और आकार दिया । परिसंघ ढांचे का

संरक्षण जो हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था का आवश्यक भाग है और परिसंघवाद हमारे संविधान का मूलभूत ढांचा है । अनुच्छेद 348 को भी राजभाषा के रूप में राष्ट्र में हिन्दी भाषा के प्रचार के उद्देश्य के समर्थन में बनाया गया था जो उपरोक्त की गई चर्चा के अनुसार, संविधान में अन्तर्विष्ट आदेशों के रूप में रूपायित है । अतः, उठाया गया उद्देश्य प्रशंसनीय है किन्तु उद्देश्य की न्यायक्षमता स्वयं संवैधानिक उपबंधों द्वारा सीमित है । बदलते सामान्य आवश्यकताओं और संविधान में अनुष्ठापित आदर्शों को सार्थक बनाने और हिन्दी में याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों को ग्रहण करने की प्रथा को लागू करने के दृष्टिकोण को वास्तविक स्वरूप प्रदान करना भी संभव और आवश्यक है । पहले हमारे द्वारा यह उल्लेख किया गया है कि न्यायालय द्वारा कार्यपालिका को बुलाकर कार्यपालिका या विधायी हस्तक्षेप के माध्यम से मुद्दे को उठाने और सुलझाने का प्रयास किया गया किन्तु राज्य की ओर से प्रति-शपथ-पत्र में ऐसी किसी इच्छा की अभिव्यक्ति प्रतीत नहीं होती । अतः, मैंने अपने विचार को इस विस्तार तक सीमित रखा जो, मेरी राय में, संवैधानिक सीमाओं के भीतर अनुज्ञेय है और जहां तक इस मुद्दे की क्षितिज को कुछ समय के लिए दृष्टिगत किया जा सकता है । अतः, विधायिका द्वारा विहित विधि से परे इस उद्देश्य के संवर्धकों की इच्छाओं को पूरा करने के लिए इस विषय को इस प्रक्रम पर विराम देना होगा जब तक तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना यथावत् बनी रहती है । अतः, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना विधिमान्य है और इसके सिवाय कोई अन्य अर्थ निकाला जाना संभव नहीं है जो इसमें वर्णित है और न ही विधि में क्या होना चाहिए के आधार पर निर्वचन के यंत्र द्वारा पढ़ा जा सकता है । न्यायालय का कार्य यह परिभाषित करना है कि विधि क्या है और यह विधायिका या कार्यपालिका का कर्तव्य है कि वे किसी व्यक्त उपबंध को उपांतरित करें क्योंकि यह लोप होने का विषय नहीं है जिसे न्यायिक निर्वचन द्वारा पूरा किया जा सके । ऐसा कहने और सम्पूर्ण पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए, जब यह अधिसूचना का निर्वचन किया जाता है तो मैं अधिसूचना को रद्द करने की कोई विधायी इच्छा नहीं पाता किन्तु वहीं आकांक्षाएं भी पूरी की जानी चाहिए और संवैधानिक निदेश को एक दिशा दी जानी चाहिए । अतः, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि भारत

के संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई अधिसूचना किसी खामी से ग्रस्त नहीं है । अतः, बिनय कुमार सिंह वाले मामले के निर्णय की शुद्धता को इस पूर्ण न्यायपीठ द्वारा उत्तर के लिए उचित ही निर्दिष्ट किया गया है और उस विस्तार तक हम तारीख 1 मई, 2015 के निर्देश करने वाले आदेश में विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त मत से सहमत पाते हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन पेश की जानी वाली याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों की बाबत अपवाद डालते हुए निकाले गए अन्तर को बिनय कुमार सिंह वाले मामले में दिए गए कारण के आधार पर हटाया नहीं जा सकता । अतः, मैं बिनय कुमार सिंह वाले मामले या इसी तरह के मामलों में दी गई तर्कणा को अनुमोदित नहीं करता और उस विस्तार तक मैं यह निष्कर्ष निकालता हूं कि स्वर्ण सिंह बग्गा वाले मामले में व्यक्त मत सही मत है किन्तु वहीं उपरोक्त की गई चर्चाओं के आलोक में मैं यह उपबंध करना आवश्यक समझता हूं कि जब तक तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना को किसी रूप में उपांतरित, अभिखंडित या प्रतिस्थापित नहीं किया जाता है तब तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिका या कर प्रतिनिर्देश को हिन्दी में फाइल किया जा सकता है किन्तु इसके साथ अंग्रेजी पाठ भी संलग्न करना होगा जो सभी विधिक प्रयोजनों के लिए याचिका का अधिप्रमाणिक पाठ होगा जब तक अधिसूचना तारीख 9 मई, 1972 लागू रहती है । (पैरा 73, 74, 75, 76, 77, 78 और 79)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	2017 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 113 : **जय प्रकाश (अधिवक्ता)** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ;	14
[2013]	2013 (4) ए. डब्ल्यू. सी. 3479 : **प्रबन्ध समिति कन्या विद्यालय, किसरोली और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	70
[2010]	2010 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 83 : **बिनय कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य बिजली बोर्ड और अन्य** ;	5, 82, 120, 121

[2003] 2003 (1) पी. एल. जे. आर. 315 : **स्वर्ण सिंह बग्गा** बनाम **एन. एन. सिंह, रजिस्ट्रार** ; 10, 12, 71

[2003] 2003 (2) बिहार ला जर्नल 419 : **बिनय कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य** ; 82, 119

[2002] (2002) 7 एस. सी. सी. 368 : **सुश्री अरुणा रॉय और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 67

[2001] (2001) 2 एस. सी. सी. 247 : **डा. विजय लक्ष्मी साधो** बनाम **जगदीश** ; 68

[2000] (2000) 1 ए. डब्ल्यू. सी. 296 = मनु./यू.पी./0072/2000 : **बलराज मिश्रा और एक अन्य** बनाम **माननीय मुख्य न्यायाधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय और अन्य** ; 65

[1994] (1994) 6 एस. सी. सी. 579 : **संतोष कुमार और अन्य** बनाम **सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय और एक अन्य** ; 65

[1994] मनु./एस.सी./0411/1994 = (1993) (सप्ली.) 4 एस. सी. सी. 24 : **कैप्टन बिरेन्द्र कुमार** बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 17

[1977] ए. आई. आर. 1977 इलाहाबाद 164 : **प्रबन्धक समिति और एक अन्य** बनाम **जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद और अन्य** ; 63

[1973] (1973) एस. सी. सी. 738 = ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2608 = मनु./एस.सी./0145/1970 : **मधुलिमय** बनाम **वेदमूर्ति** । 44, 112

रिट (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक रिट याचिका संख्या 435.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 348(2) और राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 7 के अधीन तारीख 9 मई, 1972 को जारी अधिसूचना के मतावलंबन में हिंदी में प्रारूपित और फाइल की गई रिट याचिका पर उद्भूत विवाद्यक का समाधान पूर्ण न्यायपीठ द्वारा किए जाने हेतु निदेश ।

याची की ओर से	सर्वश्री इंद्रदेव प्रसाद, संजय कुमार, सुबोध कुमार और विनोद कुमार
प्रत्यर्थी संख्या 1/राज्य की ओर से	सर्वश्री ललित किशोर, योगेन्द्र प्रसाद सिन्हा, राकेश अम्बस्था और पंकज कुमार सिंह
प्रत्यर्थी संख्या 2/बिहार राज्य पावर (होल्डिंग) कंपनी की ओर से	श्रीमती नम्रता मिश्रा और सुश्री अर्चना झा
प्रत्यर्थी संख्या 3/मध्यक्षेपी की ओर से	सर्वश्री विश्व रंजन चौधरी, सुनील कुमार सिंह, राजेश कुमार, उमेश शर्मा, नवीन कौशिक, अमित श्रीवास्तव और हरपाल सिंह राणा

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति अमरेश्वर प्रताप सिंह ने दिया ।

मु. न्या. सिंह – संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन प्रस्तुत की गई यह याचिका न्यायिक अभिरक्षा से याची को निर्मुक्त किए जाने हेतु बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी किए जाने और बिजली की चोरी से संबंधित मामले में 2003 के बिहार बिजली अधिनियम से उद्भूत कार्यवाहियों में तारीख 16 अप्रैल, 2015 के निरोधादेश को अविधिमान्य घोषित किए जाने की घोषणा के प्रयोजनार्थ फाइल की गई है । रिट याचिका हिंदी देवनागरी लिपि में प्रारूपित की गई है, जिस विवाद्यक का समाधान पूर्ण न्यायपीठ द्वारा किए जाने के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

2. न्यायालयों में हिंदी भाषा के प्रोत्साहित किए जाने के लिए

दिलचस्पी और मुकदमेबाजी में अंतर्वलित सामान्य व्यक्ति से उच्चतम प्रतिष्ठा वाले व्यक्तियों तक के मामलों में और विधि को समझे जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालयों की अभिव्यक्तियों की अभिव्यक्तिशील भाषा वह गुंजायमान विवाद्यक है जिसको काफी पहले वर्ष 1972 में बिहार राज्य द्वारा प्रख्यापित अधिसूचना के संवैधानिक निर्वचन के संबंध में हमारे समक्ष उठाया गया है । अभिव्यक्ति की भाषा का सामान्य प्रयोग और उसके मार्ग में आने वाले अवरोध तब तितर-बितर हो जाते हैं जब कोई सामान्य नागरिक सड़क या रेल मार्ग द्वारा उत्तर से दक्षिण की ओर यात्रा करता है और अपने गंतव्य स्थान पर सुविधापूर्वक पहुंच जाता है । यह एक प्रकार से विभिन्न क्षेत्रों की सामान्य अभिव्यक्तिशील भाषाओं का सदृशीकरण है जो किसी जन सामान्य के लिए इस बात को सुकर बनाता है कि वह इस विशाल राष्ट्र की अपनी तीर्थयात्रा किसी श्रद्धालु अनुयायी की भांति या किसी यात्री के रूप में या किसी पेशेवर साहसिक कार्य करने वाले के रूप में पूर्ण कर सके । इस प्रकार, इस विशाल देश में समस्त दिशाओं में अभिव्यक्ति के विलक्षण सम्मिश्रण ने अभिव्यक्तिशील कौशल की समानता को प्रोन्नत किया है ।

3. आज के विशेषज्ञता वाले पेशेवर विश्व में विधि व्यवसायी और मुकदमेबाज यह प्रत्याक्षा करते हैं कि उनकी शंकाओं और अभिव्यक्तियों को विधि के किसी न्यायालय के समक्ष ऐसी भाषा में प्रभावी विचारों के माध्यम से आगे बढ़ाया जाए और संप्रेक्षित किया जाए जो संप्रेक्षण की द्विवचनता और समझ की स्पष्टता को पूर्णता प्रदान करने वाली हो । किसी मानवीय अभिव्यक्ति की बुद्धिमानी उस संप्रेक्षण से उत्पन्न होती है जो विचारों द्वारा प्रज्वलित होती है, चाहे उसकी संसूचना के लिए प्रयोग की गई भाषा कुछ भी हो । किसी भी व्यक्ति की रुचि की भाषा में अभिव्यक्ति की यह स्वतंत्रता संविधान में प्रतिष्ठापित है । उच्च न्यायालय में देवनागरी लिपि में हिंदी के प्रयोग का विकास, उसकी स्वीकार्यता और सुविधानुसार प्रयोग के बारे में यह शंका व्यक्त की जाती रही है, जिस कारणवश हमसे संवैधानिक उपबंधों और उच्च न्यायालय के नियमों के प्रकाश में इस कार्य में अंतर्वलित होना अपेक्षित है ।

4. अत: इस बाबत एक अदृश्य अनिवार्यता है, जो न्यायालयों समेत समस्त सरकारी क्षेत्रों में विधिक क्षेत्र में वैश्विक प्रभाव के परिणामस्वरूप

अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को प्रभावी रखे जाने के लिए आज भी जारी है । मेरे विचार से इस संबंध में संतुलन स्थापित किए जाने और समस्या पर इस दृष्टिकोण से विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ व्यावहारिक समाधान पर पहुंचने के लिए यह एक समुचित उपाय होगा ।

5. याचिका पर खंड न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया और सुना गया और **बिनय कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य बिजली बोर्ड और अन्य**[1] वाले मामले में समान शक्ति संपन्न खंड न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचार से खंड न्यायपीठ ने स्वयं को असहमत पाते हुए मामले को पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट कर दिया चूंकि खंड न्यायपीठ ने यह महसूस किया कि इस मामले को **बिनय कुमार सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में उचित रीति में निर्णीत नहीं किया गया है । तारीख 1 मई, 2015 को पारित किए गए आदेश को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "यह रिट आवेदन हिंदी में फाइल किया गया है । याची के विद्वान् काउंसेल ने याची द्वारा रिट याचिका फाइल किए जाने और वह भी हिंदी में फाइल किए जाने के अधिकार के समर्थन में बिनय कुमार सिंह **बनाम** बिहार राज्य बिजली बोर्ड और अन्य 2010 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 83 वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय का अवलंब लिया जिसमें खंड न्यायपीठ द्वारा 2003 (2) बिहार ला जर्नल 419 वाले मामले में संसूचित विद्वान् एकल न्यायाधीश के विनिश्चय को अपास्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि तारीख 9 मई, 1972 को राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना में संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन अंग्रेजी में रिट याचिका फाइल किए जाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के अपवाद वर्णित हैं और यह अधिसूचना शपथ-पत्र द्वारा समर्थित आवेदनों और जिसमें रिट याचिकाएं भी सम्मिलित होंगी, के प्रस्तुतीकरण के लिए अनुकल्पी भाषा के रूप में हिंदी के लिए उपबंधित करने वाले मूल उपबंध से अपकर्षित नहीं होती । हम खंड न्यायपीठ से सहमत होने में असमर्थ हैं, जिसका

---

[1] 2010 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 83.

प्रभाव उच्च न्यायालय के समक्ष समस्त सिविल और दांडिक मामलों में दलीलें दिए जाने के प्रयोजनार्थ अंग्रेजी के अलावा हिंदी भाषा के अनुकल्पिक प्रयोग के संबंध में और आवेदन और शपथ-पत्र फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 9 मई, 1972 को जारी की गई सरकारी अधिसूचना में किए गए विभेद का अभिलोपन करना है ।

हम खंड न्यायपीठ द्वारा निकाले गए उपरोक्त निष्कर्ष, जिसका प्रभाव समस्त सिविल और दांडिक मामलों में उच्च न्यायालयों के समक्ष अंग्रेजी में दलीलें दिए जाने और आवेदन और शपथ-पत्र फाइल किए जाने के अतिरिक्त हिंदी के अनुकल्पिक प्रयोग के संबंध में तारीख 9 मई, 1972 की सरकारी अधिसूचना में किए गए विभेद का अभिलोपन करना होगा, से असहमत हूं ।

उक्त अधिसूचना में ऐसे प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के अलावा हिंदी के अनुकल्पिक प्रयोग के लिए उपबंधित करते हुए स्पष्टतः एक अपवाद सृजित किया गया है जो यह है कि जहां तक संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अपील फाइल की जाने वाली याचिकाओं और उनके समर्थन में फाइल किए जाने वाले शपथ-पत्रों का संबंध है, उनको अंग्रेजी में प्रस्तुत किया जाता रहेगा । इस अधिसूचना में आगे कहा गया है कि इसी प्रकार से करों के संदर्भ में भी आवेदन अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाएंगे ।

हमारे विचार में **बिनय कुमार सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ मामले के उक्त पहलू पर विचार करने में असफल रही । अधिसूचना का प्रयोजन उच्च न्यायालयों में शपथ-पत्रों के साथ आवेदनों के प्रस्तुतीकरण को सम्मिलित करते हुए अनुकल्पिक भाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग को प्रथमतः सामान्य नियम के रूप में समस्त सिविल और दांडिक कार्यवाहियों में अनुज्ञा प्रदान करना था और तत्पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से एक अपवाद का सृजन भी करना था । यदि रिट याचिकाओं पर भी उसी प्रकार से विचार किया जाना अपेक्षित

था जैसेकि सिविल और दांडिक मामलों में फाइल किए गए अन्य आवेदनों पर तो उनके संबंध में कोई अपवाद सृजित किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

उक्त अधिसूचना में ऐसे प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी के अनुकल्पिक प्रयोग के लिए उपबंधित करते हुए स्पष्ट रूप से एक अपवाद सृजित किया गया है जो यह है कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 को ध्यान में रखते हुए उनके अधीन फाइल की जाने वाली रिट याचिकाओं को अंग्रेजी में प्रस्तुत किया जाता रहेगा । इस अधिसूचना में आगे यह कहा गया है कि इसी प्रकार से कर संदर्भ के संबंध में भी आवेदन केवल अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाएंगे ।

हमारे विचार में **बिनय कुमार सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ मामले के उपरोक्त पहलू पर विचार करने में असमर्थ रहा । प्रथमत: सामान्य नियम के रूप में अधिसूचना का प्रयोजन आवेदनों और शपथ-पत्रों के प्रस्तुतीकरण को सम्मिलित करते हुए उच्च न्यायालय में समस्त दांडिक और सिविल कार्यवाहियों में अनुकल्पिक भाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग को अनुज्ञा प्रदान किया जाना था और तत्पश्चात् इस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के संबंध में एक अपवाद सृजित किया गया था । यदि रिट याचिका पर उसी प्रकार से विचार किया जाना था जैसेकि सिविल और दांडिक मामलों में अन्य आवेदनों पर, तो उनके संबंध में किसी अपवाद को सृजित किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

खंड न्यायपीठ ने कर संदर्भ के संबंध में अधिसूचना में शब्द "इसी प्रकार" के प्रयोग पर भी यह अभिकथित करते हुए विचार नहीं किया कि उनको भी अंग्रेजी में ही प्रस्तुत किया जाता रहेगा, किंतु खंड न्यायपीठ इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अधिसूचना में आधारभूत रूप से करों के संदर्भों के संबंध में उपबंधित किया गया है और यह अनुज्ञा प्रदान की गई है कि कोई भी आवेदन अंग्रेजी के सिवाय किसी अन्य भाषा में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा । चूंकि कर

संदर्भ के संबंध में शब्द 'इसी प्रकार' निश्चित रूप से उनको संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन फाइल किए गए आवेदनों के साथ कोटिबद्ध कर देंगे, अत: रिट याचिका और कर संदर्भ के संबंध में दो पृथक्-पृथक् निष्कर्ष निकाले जा सकते थे, जैसाकि उपरोक्त खंड न्यायपीठ ने किया ।

हमारा विचार है कि **बिनय कुमार सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में उत्पन्न पूर्वोक्त विवाद्यक को उचित प्रकार से निर्णीत नहीं किया गया है । तद्नुसार मामले को इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया जाता है ।"

6. तद्नुसार, पूर्ण न्यायपीठ का गठन किया गया किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि मामले पर तुरंत विचार नहीं किया जा सका और न ही यह प्रतीत होता है कि न्यायपीठ का गठन बाद में किया गया था जिसके पश्चात् मामले को मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत किया गया और तारीख 3 जनवरी, 2019 को नया नामांकन किया गया ।

7. इस न्यायपीठ ने तारीख 24 जनवरी, 2019 को मामले को सुना और उठाए गए विवाद्यकों के प्रभावों को दृष्टि में रखते हुए निम्नलिखित आदेश पारित किया :-

"याची के विद्वान् काउंसेल श्री इंद्रदेव प्रसाद, विद्वान् महाधिवक्ता श्री ललित किशोर और बिहार राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री योगेन्द्र प्रसाद सिन्हा को सुना ।

इस न्यायपीठ के समक्ष उठाए गए विवाद्यक इस पूर्ण न्यायपीठ द्वारा उत्तर दिए जाने के प्रयोजनार्थ किए गए निवेश के संदर्भ में तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में योजित भाषा के निर्वचन से संबंधित हैं ।

हम विचार-विमर्श के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह अधिक समुचित होगा यदि इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कि बिहार राज्य हिंदी भाषी क्षेत्रों के अंतर्गत आने वाला राज्य है, संविधान के लागू होने के पश्चात् वर्तमान संदर्भ में उत्पन्न

अपेक्षाओं की समुचित रूप से पूर्ति किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 9 मई, 1972 की उक्त अधिसूचना पर राज्य सरकार द्वारा नियुक्त विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा दिए गए परामर्श के आधार पर पुनर्विचार किया जाए ।

हमारे विचार में याचिकाओं इत्यादि के प्रारूपण में प्रयोग की जाने वाली भाषा के प्रयोग का विकल्प उच्च न्यायालय में न्यायालयिक कार्यवाहियों के संबंध में कोई असुविधा उत्पन्न किए बिना वैकल्पिक भाषा में हो सकता है, जहां तक याचिका के प्रस्तुतीकरण का संबंध है, किंतु यह संविधान के अनुच्छेद 348 सपठित 1963 के राजभाषा अधिनियम और साथ ही इस विवाद्यक पर बाध्यकारी न्यायिक उद्घोषणाओं के पुष्टिकरण में होना चाहिए ।

अत: उक्त निदेश के समाधान के प्रयोजनार्थ यह समुचित होगा कि मामले पर सरकार द्वारा पुनर्विचार किया जाए और मामले में आगे की कार्यवाही किए जाने के लिए इस न्यायालय को समुचित सूचना उपलब्ध कराई जाए । विद्वान् महाधिवक्ता तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का अंग्रेजी वृत्तांत भी उपलब्ध कराएंगे ।

विद्वान् महाधिवक्ता ने अनुरोध किया कि इस उद्देश्य के लिए चार सप्ताह का समय प्रदान किया जाए । मामले को चार सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित किया जाता है । पूर्ण न्यायपीठ को तारीख 7 मार्च, 2019 को अधिसूचित किया जाएगा ।

सभी मध्यक्षेपियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों के नाम और श्री हरपाल सिंह राणा, जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए, का नाम भी वाद सूची में दर्शित किया जाएगा ।"

8. मामले पर पूर्ववर्ती अवसरों पर सुनवाई की गई जिसके पश्चात् न्यायपीठ द्वारा निर्णय के लिए सुरक्षित कर लिया गया ।

9. आरंभिकत:, मैं विवाद के बारे में बताते हुए इस न्यायालय की विभिन्न न्यायपीठों द्वारा पारित विनिश्चयों और आदेशों, जो इस संदर्भ के प्रयोजनार्थ हमारे संज्ञान में लाए गए हैं का उल्लेख करूंगा ।

10. 1995 की एक रिट याचिका सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2825 **स्वर्ण सिंह बग्गा** बनाम **एन. एन. सिंह, रजिस्ट्रार**[1] हिंदी में प्रस्तुत की गई थी और जब यह रिट याचिका इस न्यायालय की विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत हुई, तो इस रिट याचिका के याची की अनुपस्थिति में यह टिप्पणी करते हुए खारिज कर दिया गया कि यह रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 348 के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए पूर्णतया भ्रामक है और तद्नुसार खारिज की जाती है । तारीख 5 मई, 1995 के इस आदेश को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "याची की ओर से कोई उपस्थित नहीं है । याचिका पूर्णत: भ्रामक है और जहां तक संविधान के अनुच्छेद 348 के आज्ञापक उपबंधों का संबंध है, सरसरी में खारिज किए जाने योग्य है और जब तक कि संसद् द्वारा विधि द्वारा अन्यथा रूप से उपबंधित न किया जाए, प्रत्येक उच्च न्यायालय में समस्त कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी ।
>
> यह याचिका तद्नुसार खारिज की जाती है ।"

11. याची पुन: व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ और उसने हमारा ध्यान मामले की ओर आकर्षित किया जिस पर न्यायालय ने उसके द्वारा मामले की ओर पुन: ध्यानाकर्षण किए जाने को दृष्टि में रखते हुए विचार किया और उसके अनुरोध को यह निष्कर्ष देते हुए अस्वीकृत कर दिया कि तारीख 5 मई, 1995 के आदेश को उपांतरित किए जाने का कोई कारण नहीं है । तारीख 15 मई, 1995 के आदेश को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "यह याचिका तारीख 5 मई, 1995 को कार्यालय टिप्पण के साथ आदेश हेतु प्रस्तुत की गई थी । कार्यालय द्वारा यह बताया गया था कि याचिका त्रुटिपूर्ण है चूंकि याचिका में इस बाबत कोई प्रकथन नहीं किया गया है कि याची ने इसी विषयवस्तु के संदर्भ में इस न्यायालय की पहले शरण नहीं ली थी ।
>
> याची की ओर से उस तारीख पर कोई उपस्थित नहीं हुआ

---

[1] 2003 (1) पी. एल. जे. आर. 315.

था । ऐसा प्रतीत होता है कि यह याचिका लोक हित के संबंध में फाइल की गई थी । याचिका हिंदी में है । याचिका में किए गए कथनों के समर्थन में कोई शपथ-पत्र फाइल नहीं किया गया है । मात्र इसी आधार पर विचार किए जाने योग्य प्रतीत नहीं होती ।

मैं याचिका के परिशीलन पर इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि याचिका प्रथमदृष्ट्या भ्रमपूर्ण है और पोषणीय नहीं है । चूंकि संविधान के अनुच्छेद 348 की आज्ञा के अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय में कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में की जानी होती हैं जब तक कि संसद् विधि अधिनियमित करने के द्‌वारा अन्यथा उपबंधित न कर दें । इस याचिका में कोई भी लोक हित अंतर्वलित नहीं है । चूंकि याचिका पूर्णत: भ्रामक है, मैंने तारीख 5 मई, 1995 के आदेश द्‌वारा इसे खारिज कर दिया था ।

चूंकि याचिका पर तारीख 5 मई, 1995 को आदेश पारित किए जाने के पूर्व सुनवाई नहीं की गई थी, याची की प्रार्थना पर इस याचिका को आज शीर्षक "ध्यानाकर्षण किए जाने के प्रयोजनार्थ" सूचीबद्ध किया गया है ।

मैंने याची को व्यक्तिगत रूप से सुना ।

मैं याची को व्यक्तिगत रूप से सुनने के पश्चात् तारीख 5 मई, 1995 को पारित अपने आदेश को उपांतरित करने का कोई कारण नहीं पाता ।"

12. याची ने 1995 की एल.पी.ए. संख्या 600 पूर्वोक्त आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की जिसको भी तारीख 21 जुलाई, 1995 को खारिज कर दिया गया, जिस आदेश को **स्वर्ण सिंह बग्गा** बनाम **एन. एन. सिंह, रजिस्ट्रार**[1] वाले मामले में संसूचित किया गया है और नीचे उद्धृत किया गया है :–

यह लेटर्स पेटेंट अपील 1995 के सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2825 में विद्‌वान् एकल न्यायाधीश द्‌वारा पारित तारीख 5 मई, 1995 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है, जिन्होंने उपरोक्त मामले को संविधान

---

[1] 2003 (1) पी. एल. जे. आर. 315.

के अनुच्छेद 348 को निर्दिष्ट करते हुए खारिज कर दिया था ।

2. अपीलार्थी की प्रार्थना यह थी कि उच्च न्यायालय के समक्ष समस्त कार्यवाहियां हिंदी में होनी चाहिए, दलीलें हिंदी में दी जानी चाहिए और निर्णय भी हिंदी में दिए जाने चाहिए । संभवत: यह प्रार्थना प्रदान नहीं की जा सकती । किसी व्यक्ति के लिए यह कदापि वर्जित नहीं है कि वह हिंदी में आवेदन फाइल करे और न ही किसी व्यक्ति के लिए इस प्रकार का कोई वर्जन है कि वह हिंदी में दलीलें न दे सके और वास्तव में अनेक मामलों में इन बातों को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किया जाता है ।

3. हम मामले को उस दृष्टि से देखते हुए इस अपील पर विचार करने का कोई न्यायोचित्य नहीं पाते । तद्नुसार इसको निरस्त किया जाता है ।"

13. यही विवाद्यक उस समय पुन: उत्पन्न हुआ जब **बिनय कुमार सिंह** (उपरोक्त) नामक एक व्यक्ति द्वारा हिंदी देवनागरी लिपि में एक रिट याचिका फाइल की गई और इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपने निर्णय में **स्वर्ण सिंह बग्गा** (उपरोक्त) वाले मामले और **लाल बिहार साव** बनाम **बिहार राज्य द्वारा मुख्य सचिव** वाले मामले में फाइल की गई 2002 की सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 1948 में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 9 जुलाई, 2002 को पारित निर्णय और इसी मामले में 2002 की एल.पी.ए. संख्या 910 को खारिज करते हुए पारित किए गए निर्णय पर विचारोपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका को पटना उच्च न्यायालय में केवल अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत किया जा सकता है । उक्त विनिश्चय को 2003 के एल.पी.ए. संख्या 475 में खंड न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई । खंड न्यायपीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय को अपास्त कर दिया और यह निष्कर्ष निकाला कि अनुच्छेद 226/227 के अधीन किसी आवेदन को अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में संस्थित किए जाने में कोई प्रतिषेध नहीं है । खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में यह परावर्तित होता है कि हिंदी सिविल

और दांडिक मामलों और शपथ-पत्रों द्वारा समर्थित अन्य आवेदनों के संबंध में उच्च न्यायालय की अनुकल्पी भाषा होगी । खंड न्यायपीठ ने आगे अभिनिर्धारित किया कि इस अधिसूचना के परंतुक तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना के खंड (1) खंड (2) के सारभूत उपबंधों को नियंत्रित नहीं करेंगे । खंड न्यायपीठ ने **स्वर्ण सिंह बग्गा** (उपरोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा पारित पूर्ववर्ती निर्णय को भी निर्दिष्ट किया और तद्नुसार निर्णय पारित किया ।

14. **जय प्रकाश (अधिवक्ता)** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में एक अन्य खंड न्यायपीठ ने अनुच्छेद 226 के अधीन हिंदी में प्रस्तुत की गई रिट याचिका के संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से उठाए गए विवाद्यक के संबंध में अभिनिर्धारित किया कि ऐसा कोई वर्जन नहीं था और **बिनय कुमार सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए और **स्वर्ण सिंह बग्गा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि रिट याचिका हिंदी में फाइल की जा सकती है और इसी भाषा में दलीलें भी दी जा सकती हैं । इस निर्णय को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "रिट आवेदनों और अन्य कार्यवाहियों के फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ हिंदी के प्रयोग के मामले में याची की शिकायत का पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है और बिनय कुमार सिंह **बनाम** बिहार राज्य बिजली बोर्ड और अन्य [2010 (3) बिहार ला जर्नल 83] और स्वर्ण सिंह बग्गा **बनाम** एन. एन. सिंह, रजिस्ट्रार 2003 (1) पी. एल. जे. आर. 315] वाले मामलों में इस न्यायालय की न्यायपीठों द्वारा निर्णीत विवाद्यकों में इस विवाद्यक का संज्ञान पहले ही लिया जा चुका है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कोई भी व्यक्ति हिंदी में आवेदन या याचिका फाइल कर सकता है और दलीलें भी दे सकता है ।
>
> 2. यह विधिक स्थिति होने के कारण जो कि पूर्वोक्त विनिश्चयों से उद्भूत होती है, याची को हिंदी में आवेदन और

[1] 2017 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 113.

याचिकाएं फाइल करने और दलीलें देने के लिए भी पहले से ही स्वातंत्र्य उपलब्ध है । ऐसा होने के कारण यदि एक बार कोई विवाद्यक पूर्वोक्त निर्णयों द्वारा निर्णीत हो जाता है, तो इस याचिका में आगे किसी भी प्रकार के निर्देश जारी किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

3. रिट याचिका उपरोक्त आदेश के निबंधनों के अनुसार, जैसाकि इसमें इसके ऊपर उपदर्शित किया गया है, निस्तारित की जाती है ।"

15. ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त निर्णय वर्ष 2015 में ही इस मामले को निर्दिष्ट किए जाने के बावजूद और निर्दिष्ट आदेश का संज्ञान लिए बिना तारीख 30 मार्च, 2017 को पारित किया गया था ।

16. इस संदर्भ में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि याचिका फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ हिंदी देवनागरी लिपि के प्रयोग को संविधान के अधीन प्रत्याभूत वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य से संबंधित विवाद्यक के प्रयोजनार्थ न्यायालय की शासकीय भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की जानी चाहिए, यही इस निर्देश की मुख्य बात है । हिंदी देवनागरी लिपि में संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याची की ओर से यह दलील दी गई है कि उसे याचिका फाइल किए जाने के द्वारा संवैधानिक अनुतोष प्राप्त करने का अधिकार है और इसी अनुतोष को प्राप्त करने की ईप्सा करते हुए यही निवेदन पांच मध्यक्षेपियों द्वारा भी किया गया है, जिन्होंने अपने आवेदन मध्यक्षेप की प्रार्थना करते हुए फाइल किए हैं जिनको भी इस मामले में सुना गया है । 2017 की मध्यक्षेप आवेदन संख्या 180 इस न्यायालय के एक अधिवक्ता श्री विश्वरंजन चौधरी द्वारा फाइल की गई है जिन्होंने इस संबंध में अपनी शिकायत उठाई है । 2017 की मध्यक्षेप आवेदन संख्या 265 भी इसी आधार पर एक अन्य अधिवक्ता श्री सुनील कुमार सिंह द्वारा फाइल की गई है । इसी का अनुसरण करते हुए एक अन्य व्यक्ति श्री हरपाल सिंह राणा ने 2019 की मध्यक्षेप आवेदन संख्या 3 यह दावा करते हुए फाइल की है कि वह जन हित में हिंदी के पक्ष को उठा रहे हैं जिन्होंने अभिलेख पर शपथ-पत्र द्वारा समर्थित अपने आवेदन के

माध्यम से कुछ दस्तावेज फाइल किए हैं । इसी प्रकार के अभिवाक् करते हुए डा. अजीत कुमार पाठक नामक एक व्यक्ति द्वारा भी 2019 की मध्यक्षेप आवेदन संख्या 4 यह दावा करते हुए फाइल की गई है कि वे बिहार राज्य में भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार के संयोजक हैं । पांचवां आवेदन 2019 का मध्यक्षेप ओवदन संख्या 5 एक रजिस्ट्रीकृत संस्था के पदाधिकारी श्री राजदेव प्रसाद वर्मा द्वारा यह दावा करते हुए फाइल किया गया है कि वे उपरोक्त पक्ष का समर्थन करते हैं । संक्षेप में इन सभी आवेदनों द्वारा लगभग समान आधारों पर एक ही अनुतोष प्रदान किए जाने की प्रार्थना की गई है ।

17. हम उठाए गए अन्य विवाद्यकों, जो न्यायालयों में हिंदी भाषा का प्रयोग किए जाने के प्रति भाव दर्शित करते हैं, इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि श्री विश्वरंजन चौधरी और श्री सुनील कुमार सिंह, जो इस न्यायालय के अधिवक्ता हैं, फाइल की गई 2017 की मध्यक्षेपी आवेदन संख्या 265 द्वारा हिंदी भाषा के प्रतिरोध को राष्ट्रद्रोह के दंडनीय अपराध और अवमानना के रूप में भी कोटिबद्ध किए जाने की सीमा तक चले गए । इस प्रकार के शपथ-पत्रों द्वारा प्रोत्साहित होकर याची द्वारा एक अनुपूरक शपथ-पत्र फाइल किया गया जिसके द्वारा उसने इस सीमा तक कथन किया है कि देश के किसी नागरिक द्वारा भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किए जाने का यह अधिकार इस न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा भी छीना नहीं जा सकता, वह भी तब जब अधिकांश न्यायाधीश स्वेच्छया से हिंदी में प्रारूपित आवेदनों पर विचार करते हों । हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भावनाएं और उत्साह, जो हिंदी भाषा को प्रोन्नत किए जाने के विचार के साथ मिश्रित हैं, ने उपरोक्त मध्यक्षेपियों और याचियों को आलोचना के स्वरूप में अपने विचार प्रस्तुत किए जाने के लिए विवश किया होगा किंतु हम यह सलाह देंगे कि ऐसे विवाद्यकों को उठाए जाते समय सावधानी बरती जानी चाहिए जिससे कि ये विवाद्यक संवैधानिक और विधिक प्राचलों, जिनके भीतर किसी याचिका के अभिवचन समाविष्ट होने चाहिए, तक ही सीमित रहें । अनावश्यक रूप से निवेदन और नारेबाजी से बचा जाना चाहिए । चूंकि यह उपधारणा है कि याचिकाओं का प्रारूपण गरिमापूर्ण भाषा में किया जाता है और किसी भी प्रकार की फालतू बातों से बचा जाना चाहिए ।

हम समुचित रूप से **कैप्टन बिरेन्द्र कुमार** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि किसी भी याचिका का प्रारूपण गरिमापूर्ण भाषा में किया जाना चाहिए और उसके प्रारूपण में अनावश्यक विश्लेषणों का प्रयोग अत्यधिक नहीं किया जाना चाहिए । प्रस्तुतीकरण में शालीनता और अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता याचिका में उठाए गए विवाद्यकों की ग्राह्यता को निर्बाध करते हैं और न्यायालयों द्वारा याचिका में उठाए गए तथ्यों और विधि के प्रश्नों को तीव्रतापूर्वक समझ पाने में सहायता करते हैं । अतिरिक्त मात्रा में अभिकथनों, याचिका में उठाए गए विवाद्यकों पर अनावश्यक रूप से विचलन में सहायता करते हैं और विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहां राजनैतिक, धार्मिक और इसी प्रकार के किसी अन्य झुकाव से बचा जाना चाहिए । अत: ध्यान संवैधानिक अपेक्षाओं, जिनको हमारे द्वारा हमको ही दिया जाना है, पर केंद्रित किया जाना चाहिए, जिसको समाज द्वारा व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है और जिसको अधिरोपण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए । मध्यक्षेपियों ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का हवाला दिया है जिसमें उन्होंने अपने निवेदन प्रस्तुत किए हैं और उपनिवेशी काल के दौरान न्यायालयों में वर्णाकुलर भाषा का प्रयोग अस्वीकार किए जाने के कारण स्वतंत्रता सेनानियों को जीवन और स्वातंत्र्य से वंचित किए जाने की शिकायत की है । उन्होंने करोड़ों देशवासियों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दांडिक विचारणों का सामना करते समय बर्दाश्त किए गए अत्यधिक अलाभों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया और इसलिए उनकी यह दलील है कि संविधान ने एक राजभाषा के माध्यम से राष्ट्र को एकीकृत किए जाने के प्रयोजनार्थ विशेष सावधानी बरती है जिसका प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जाना है जो संघ और राज्य के मामलों की देखभाल करने के दायित्वाधीन है ।

18. याची ने यह प्रार्थना की है और बल्कि इस बात पर जोर भी दिया है कि पटना उच्च न्यायालय में संविधान 226 और 227 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका में अनुतोषों की ईप्सा किए जाने के प्रयोजनार्थ देवनागरी लिपि में हिंदी को भाषा के रूप में प्रयोग करते हुए

[1] मनु./एस.सी./0411/1994 = (1993) (सप्ली.) 4 एस. सी. सी. 24.

फाइल किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की जानी चाहिए ।

19. न्यायालय में बोली जाने वाली भाषा में धीरे-धीरे स्थानीय वर्णाकुलर अभिव्यक्ति को सम्मिलित कर लिया गया है किंतु उच्च न्यायालय में लिखित भाषा पटना उच्च न्यायालय के नियम के अध्याय 3 भाग 2 नियम 1 के अधीन विदित प्रथा और प्रक्रिया द्वारा शासित बनी हुई है । उक्त नियम को नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "1. उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाने वाला प्रत्येक आवेदन अंग्रेजी भाषा में रिट याचिका द्वारा होगा ।"

20. शपथ-पत्र की अंतर्वस्तु और उसके प्रस्तुतीकरण का तरीका पूर्वोक्त अध्याय 3 के अंतर्गत विहित है । समर्थन में फाइल किए जाने वाले शपथ-पत्र को 1873 के भारतीय शपथ अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत शपथ आयुक्त द्वारा शपथ के आधार पर प्रमाणित किया जाता है और इस अध्याय (पटना उच्च न्यायालय के नियम का अध्याय 3) के नियम 18 को नीचे उद्धृत किया गया है जिसके अंतर्गत यह अपेक्षित है कि घोषणाकर्ता के समक्ष शपथ-पत्र उस भाषा में पढ़ा जाए और उसको समझाया जाए जिसको वह समझता है । नियम 18 निम्नलिखित है :-

> "18. आयुक्त, जिसके समक्ष किसी याचिका या शपथ-पत्र का सत्यापन किया जाने वाला है, किए जाने के पहले उस व्यक्ति, जो शपथ-पत्र का सत्यापन करने के लिए उपस्थित है, से पूछेगा कि क्या उसने याचिका या शपथ-पत्र को पढ़ लिया है और उसकी अंतर्वस्तु को समझ लिया है और यदि इस प्रकार का सत्यापन करने वाला व्यक्ति यह अभिकथित करता है कि उसने याचिका या शपथ-पत्र को नहीं पढ़ा है या ऐसा प्रतीत होता है कि उसने याचिका या शपथ-पत्र की अंतर्वस्तु को नहीं समझा है, तो शपथ-आयुक्त सत्यापन किए जाने या शपथ-पत्र तैयार किए जाने की अनुज्ञा प्रदान करने के पूर्व घोषणाकर्ता के समक्ष उस भाषा में पढ़ेगा और उसको समझाएगा, जो भाषा घोषणाकर्ता समझता है ।

इसी नियम का नियम 23 निम्नलिखित है –

"कोई भी याचिका या शपथ-पत्र उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं पढ़ा जाएगा या उसका प्रयोग उच्च न्यायालय में नहीं किया जाएगा जो इस अध्याय के उपबंधों का अनुपालन नहीं करता :"

परंतु यह तब जबकि शपथ-पत्र या खंडन शपथ-पत्र, जिनको उच्च न्यायालयों में रिट याचिकाओं या अपीलों में फाइल किया जाना है, को शासकीय प्लीडर या लोक अभियोजन, जिनको एतद्द्वारा शपथ आयुक्त के रूप में नियुक्त किया जाता है या उच्च न्यायालय द्वारा उस जिले, जिसमें वह अधिकारी जो शपथ-पत्र या खंडन शपथ-पत्र पर शपथपूर्वक अभिकथन करता है, इस प्रयोजनार्थ नियुक्त किसी अधिवक्ता के समक्ष सरकारी अधिकारियों द्वारा शपथपूर्वक सत्यापित और हस्ताक्षरित किया जाता है, जो किन्हीं विपर्ययेन विनिर्दिष्ट निर्देशों के अध्यधीन रहते हुए कार्य करता है ।"

21. उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किए जाने के लिए आवेदनों के संबंध में उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 4 के अंतर्गत यह उपबंधित किया गया है कि मूल अभिलेख, जिसको पारेषित किया जाना है, अंग्रेजी भाषा में पारेषित किया जाएगा, जैसाकि अध्याय 4 के नियम 12(क)(ख) से स्पष्ट है और जिसको नीचे उद्धृत किया गया है :–

"12 (क) जहां कार्यवाहियां, जिनसे अपील चाहे इस न्यायालय में या निचले न्यायालयों में उद्भूत हुई, अंग्रेजी भाषा में हैं, तो रजिस्ट्रार, जब तक कि उच्चतम न्यायालय द्वारा अन्यथा आदेश पारित न कर दिया जाए, उस न्यायालय से अपील याचिका की प्रति प्राप्त होने पर अपीलार्थी के खर्चों पर निचले न्यायालय के अभिलेख को सम्मिलित करते हुए मामले के मूल अभिलेख को न्यायालय को पारेषित करेगा ।

(ख) जहां कार्यवाहियां, जिनसे अपील उद्भूत हुई है, इस न्यायालय या निचले न्यायालय में चल रही हैं, अंग्रेजी भाषा में नहीं है तो रजिस्ट्रार न्यायालय को प्रत्यर्थी पर अपील याचिका की

सूचना की तामीली की तारीख से छह माह के भीतर तीन प्रतियों में अंग्रेजी में अनुवादित प्रति, न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील का समुचित अभिलेख, जिसकी एक प्रति सम्यक् रूप से प्रमाणित होगी, न्यायालय को पारेषित करेगा और कोई भी मूल अभिलेख पारेषित नहीं किया जाएगा जब तक कि विनिर्दिष्ट रूप से मंगाया न जाए ।"

22. संविधान के निर्माता देश में प्रचलित भाषाओं के प्रति अत्यधिक जागरूक थे और इसलिए 'शासकीय' भाषा के प्रयोजनार्थ संविधान के भाग 17 में अनुच्छेद 343 सम्मिलित किया गया, जो इस प्रकार है :-

"**343. संघ की राजभाषा** – (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी ।

संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप होगा ।

(2) खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था :

परंतु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा ।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद् उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात्, विधि द्वारा–

(क) अंग्रेजी भाषा का, या

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं ।"

23. संविधान का अनुच्छेद 344 राजभाषाओं पर संसद् की एक समिति और आयोग के गठन के संबंध में उपबंधित करता है जो शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के विकासशील प्रयोग और संविधान के अनुच्छेद 348 के अधीन प्रयोग की जाने वाली भाषा को सम्मिलित करते हुए संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी या समस्त प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधन अधिरोपित किए जाने के प्रयोजनार्थ पुनर्विलोकन करेगा । भाग 17 का अध्याय 2 क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग के लिए उपबंधित करता है और राज्यों के विधान-मंडल को संविधान के अंतर्गत प्राधिकृत किया गया है कि वे राज्य में प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में से किसी एक भाषा या अनेक भाषाओं या हिंदी को भाषा के रूप में या राज्य के समस्त या किसी शासकीय प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषाओं को इस परंतुक के साथ अपनाएं कि उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए इस भाषा को संविधान के आरंभ के तुरंत पहले प्रयोग किया जाता था ।

24. इसके विपरीत वर्तमान मामले के प्रयोजनों के लिए सुसंगत उपबंध संविधान के अनुच्छेद 348 और 349 हैं जिनको नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "**348. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा** – (1) इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक –
>
> (क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी,
>
> (ख) (i) संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुर:स्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,
>
> (ii) संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के

राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

(iii) इस संविधान के अधीन अथवा संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन निकाले गए या बनाए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के,

प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे ।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में हैं, हिंदी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा:

परंतु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी ।

349. **भाषा से संबंधित कुछ विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया** – इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि के दौरान, अनुच्छेद 348 के खंड (1) में उल्लिखित किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद् के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पुर:स्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा और राष्ट्रपति किसी ऐसे विधेयक को पुर:स्थापित या किसी ऐसे संशोधन को प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर और उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ही देगा, अन्यथा नहीं ।"

25. विशेष निदेश वाले अध्याय के अंतर्गत अनुच्छेद 350क उपबंधित करता है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्रधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह

ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है ।

26. अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण निदेश समाविष्ट है, जो निम्नलिखित है :–

> "**351. हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश** – संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे ।"

27. वे भाषाएं जिनको संविधान की आठवीं अनुसूची में हिंदी समेत सम्मिलित किया गया है, निम्नलिखित हैं :–

"**आठवीं अनुसूची**

1. असमिया ।
2. बंगाली ।
3. बोडो ।
4. डोगरी ।
5. गुजराती ।
6. हिंदी ।
7. कन्नड़ ।
8. कश्मीरी ।
9. कोंकणी ।
10. मैथिली ।

11. मलयालम ।

12. मणिपुरी ।

13. मराठी ।

14. नेपाली ।

15. उड़िया ।

16. पंजाबी ।

17. संस्कृत ।

18. संथाली ।

19. सिंधी ।

20. तमिल ।

21. तेलुगू ।

22. उर्दू ।”

28. अनुच्छेद 348 की यह आज्ञा है कि उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में समस्त कार्यवाहियां उप अनुच्छेद (2) के अध्यधीन रहते हुए अंग्रेजी भाषा में होंगी, जो सुस्पष्टतया उपबंधित करता है कि उच्च न्यायालय में हिंदी भाषा का या राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत होगा । परंतु यह तब जबकि इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा किए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश पर लागू नहीं होगी । अत:, उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में लिखित या मौखिक भाषा का माध्यम राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित किसी अधिसूचना के अध्यधीन रहते हुए, हिंदी में भी हो सकता है ।

29. हमारे समक्ष प्रस्तुत मामले में तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना अभिलेख पर उपलब्ध है जिसके अंतर्गत एक अपवाद सृजन किया गया है जो यह है कि अंग्रेजी के अलावा हिंदी का अनुकल्पिक प्रयोग उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में अनुज्ञेय है सिवाय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिकाओं और कर संबंधी मामलों

से उद्भूत होने वाले निदेशों के संबंध में । तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना को नीचे उद्धृत किया गया है :-

मंत्रिमंडल (राजभाषा) सचिवालय

अधिसूचना

9 मई, 1972

सं. 31 हि. 3-5043168....185 रा. संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (2) एवं आफसियल लैग्वेजेज ऐक्ट, 1963 (अधिनियम 19, 1963) की धारा 7 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बिहार के राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उच्च न्यायालय में निम्नांकित कार्यवाहियों के लिए हिंदी भाषा का वैकल्पिक प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत करते हैं :-

(1) पटना उच्च न्यायालय के समक्ष दीवानी तथा फौजदारी मामलों में बहस करने के लिए ।

(2) शपथ-पत्रों सहित आवेदन प्रस्तुत करने के लिए :

किंतु अपवाद स्वरूप भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन प्रस्तुत किए जाने वाले आवेदनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा । आवेदनों से संलग्न अनुबंध का अंग्रेजी में होना आवश्यक नहीं होगा । इसी प्रकार कर निर्देश (टैक्स रेफरेसेज) से संबंधित आवेदन भी केवल अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाते रहेंगे । खास-खास मामलों में, पटना उच्च न्यायालय हिंदी के कागजात का अंग्रेजी में अनुवाद कराने का आदेश दे सकेगा ।

(3) पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए जाने वाले किसी निर्णय बिक्री या आदेश के लिए किंतु जहां कोई निर्णय बिक्री या आदेश हिंदी में पारित किया या दिया जाएगा, वहां पटना उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी अनुवाद साथ में दिया जाएगा ।

30. उक्त अधिसूचना का अंग्रेजी में अनुवादित वृत्तांत, जिसे राज्य

की ओर से फाइल किए गए खंडन शपथ-पत्र के साथ फाइल किया गया है और जो शासकीय राजपत्र में नहीं छपा है, नीचे उद्धृत किया गया है :-

Cabinet (Rajbhasha) Secretariat

Notification

09th May, 1972

No. 3/Hi 3-5043/68-185-Ra- In exercise of the powers conferred under Article 348(2) of the Constitution and Section 7 of Official Languages Act, 1963 (Act 19, 1963) the Governor of Bihar with the previous consent of the President authorises the alterative use of Hindi language in the High Court in following proceedings –

(1) For arguments in civil and criminal cases before Patna High Court.

(2) For submitting application with affidavits : However English shall continue to be used for applications submitted under Article 226 & 227 of the Constitution of India as an exception. Annexure attached to the applications shall not be requireded in English. Similarly, application connected with the tax reference shall continue to be submitted in English as well. In Special cases the Patna High Court may make an order to translate Hindi papers into English.

(3) Where any decision, decree or order shall be passed or pronounsced by the Patna High Court in Hindi, there English translation by the authority of Patna High Court shall be given together.

31. इस प्रक्रम पर हम अभिलेख पर यह अभिलिखित करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 344 के उपबंधों के अनुसार जिस समिति और आयोग का गठन हुआ था और जिसके गठन के प्रयोजनार्थ संसद् के समक्ष चर्चा हुई थी, का समापन 1963 का राजभाषा अधिनियम पारित किए जाने के साथ हो गया था । इस अधिनयम की धारा 2(ख) हिंदी को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित करती है :-

> "2(ख) 'हिंदी' से वह हिंदी अभिप्रेत है जिसकी लिपि देवनागरी है ।"

32. अधिनियम की धारा 3 संघ के राजकीय प्रयोजनों और संसद् में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा के बने रहने के प्रयोजनार्थ उपबंधित करती है । धारा 4 शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी के प्रयोग में की गई प्रगति के पुनर्विलोकन के प्रयोजनार्थ अधिनियम के प्रवर्तन से 10 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् एक समिति की स्थापना के लिए उपबंधित करती है । धारा 5 उपबंधित करती है कि नियत दिन को और उसके पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित किसी केंद्रीय अधिनियम या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश अथवा संविधान के अधीन या किसी केंद्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गए किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का हिंदी में अनुवाद उसका हिंदी प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा । इस धारा में यह भी उपबंधित किया गया है कि संसद् में प्रस्तावित किए जाने वाले सभी विधेयकों के अंग्रेजी में प्राधिकृत पाठ के साथ उसका हिंदी में अनुवाद संलग्न होगा और उस रीति में प्राधिकृत किया जाएगा जैसाकि नियमों द्वारा विहित किया जाए ।

33. उच्च न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के संबंध में धारा 7 जो उपबंधित करती है वह निम्नलिखित है :-

> "**7. उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिंदी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग** – नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या

दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है, वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।"

34. अत: उपरोक्त पृष्ठभूमि में उच्च न्यायालय में लिखी और बोली जाने वाली भाषा के रूप में तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में सृजित अपवाद के अध्यधीन रहते हुए हिंदी भी सम्मिलित है । यही वह पहलू है जिसको संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन जारी की गई अधिसूचना के अंतर्गत विनिर्धारित किया गया है और जिसको यह दलील देते हुए चुनौती दिए जाने की ईप्सा की गई है कि यदि संवैधानिक प्रत्याक्षाएं और आशय हिंदी भाषा के विकासशील प्रयोग को सुनिश्चित करना है, तो उच्च न्यायालय को उसे प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ पीछे नहीं हटना चाहिए और उस सीमा तक याची की यह प्रार्थना है कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाओं के संबंध में भाषाओं का यह अवरोध समाप्त किया जाना चाहिए और लिखित भाषा के वर्जन को ऐसे प्रयोजनों के लिए निराकृत किया जाना चाहिए और बल्कि समाप्त किया जाना चाहिए ताकि हिंदी देवनागरी लिपि में रिट याचिकाएं फाइल किए जाने की संपूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो सके ।

35. इस उद्देश्य के लिए पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा इस न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों को यह दलील देते हुए उद्धृत किया गया है कि (भाषा के) ऐसे प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान की गई है और यदि परस्पर विरोधी निर्णयों के कारण कोई टकराव उत्पन्न हुआ है तो उसका निराकरण इस न्यायालय की रिट अधिकारिता के अंतर्गत प्रस्तुत की जाने वाली याचिकाओं और आवेदनों के प्रस्तुतीकरण के प्रयोजनार्थ हिंदी देवनागरी लिपि के प्रयोग की अनुज्ञा के पक्ष में झुकते हुए किया जाना चाहिए ।

36. इन निवेदनों पर संविधान के अंतर्गत हिंदी भाषा के विकासशील प्रयोग, विशेष रूप से इस राज्य, जो देश के हिंदी भाषी क्षेत्र का भाग है, को ध्यान में रखते हुए बल दिया गया । जन सामान्य

द्वारा राज्य में भाषा का दिन प्रतिदिन प्रयोग एक प्रबल लक्षण है जिसको इस आशा के साथ न्याय संवितरण प्रणाली के साथ प्रत्यक्ष रूप से संयोजित किए जाने की ईप्सा की गई है कि इस अवरोध को नियमों के अंतर्गत हटाया जाना चाहिए चूंकि यह अवरोध जनसामान्य और विधिक पेशे के मार्ग में अवरोध है और संविधान की प्रत्याक्षाओं के अनुरूप नहीं है ।

37. यह विधिक अवरोध जिसको हटाए जाने की अपेक्षा की गई है और जिसके प्रयोजनार्थ हमने तारीख 24 जनवरी, 2019 को आदेश पारित किया, निम्नलिखित है :-

> "याची के विद्वान् काउंसेल श्री इंद्रदेव प्रसाद, विद्वान् महाधिवक्ता श्री ललित किशोर और बिहार राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री योगेन्द्र प्रसाद सिन्हा को सुना । इस पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष उठाया गया विवाद्यक उस निदेश के संदर्भ में जिसका उत्तर इस पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिया जाना है, तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में योजित भाषा के निर्वचन से संबंधित है ।
>
> विचार-विमर्श के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह सर्वथा उचित होगा कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि बिहार राज्य हिंदी भाषी राज्यों में से एक है, संविधान के उद्भव के पश्चात् वर्तमान संदर्भ में उद्भूत अपेक्षा को समुचित रूप से पूर्ण किए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार द्वारा विद्वान् महाधिवक्ता के परामर्श पर तारीख 9 मई, 1972 की उपरोक्त अधिसूचना का पुनरीक्षण किया जाए ।
>
> हमारे विचार में उच्च न्यायालय में लंबित कार्यवाहियों में कोई असुविधा उत्पन्न किए बिना याचिकाओं इत्यादि के प्रारूपण में भाषा के प्रयोग का विकल्प वैकल्पिक भाषाओं में हो सकता है, जहां तक याचिका के प्रस्तुतीकरण का संबंध है किंतु यह संविधान के अनुच्छेद 348 सपठित 1963 के राजभाषा अधिनियम और साथ ही इस विवाद्यक पर बाध्यकारी न्यायिक उद्घोषणाओं के साथ सामंजस्य में होना चाहिए ।

अत: उक्त निदेश का समाधान किए जाने के प्रयोजनार्थ यह अत्यधिक उचित होगा कि मामले पर सरकार द्वारा पुनर्विचार किया जाए और इस न्यायालय को मामले में आगे अग्रेषित होने के प्रयोजनार्थ समुचित सूचना उपलब्ध कराई जाए ।

विद्वान् महाधिवक्ता ने प्रार्थना की कि उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु चार सप्ताह का समय प्रदान किया जाए ।

मामले को चार सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित किया जाता है । पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष मामला तारीख 7 मार्च, 2019 को अधिसूचित हो ।

सभी मध्यक्षेपियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों के नाम और व्यक्तिगत रूप से उपस्थित श्री हरपाल सिंह राणा का नाम वाद सूची में भी दर्शित किया जाएगा ।"

38. तथापि, राज्य ने संसदीय सचिवालय के प्रमुख सचिव के माध्यम से खंडन शपथ-पत्र फाइल किया जिसके पैरा 8 से 11 को नीचे उद्धृत किया गया है :–

"8. संविधान के अनुच्छेद 348 में यह उल्लेख किया गया है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय में प्रयोग की जाने वाली भाषा अंग्रेजी होगी जब तक कि संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित न करे । संविधान के अनुच्छेद 348(2) में यह अभिकथित है कि किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिंदी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा ।

9. संविधान के अनुच्छेद 348(2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बिहार के माननीय राज्यपाल ने माननीय राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से 1963 के राजभाषा अधिनियम की धारा 7 के अधीन तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना द्वारा ज्ञापन संख्या 185 जारी कर दी थी जिसके द्वारा उच्च न्यायालय में हिंदी भाषा

के अनुकल्पिक प्रयोग का प्रावधान निम्नलिखित कार्यवाहियों में किया गया है –

"(i) पटना उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल और दांडिक मामलों में दी जाने वाली दलीलें ;

(ii) शपथ-पत्र के साथ आवेदन प्रस्तुत किए जाने के लिए ;

(iii) तथापि, संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन प्रस्तुत किए गए आवेदनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग जारी रहेगा । आवेदनों के साथ संलग्नक का अंग्रेजी में होना अपेक्षित नहीं होगा । इसी प्रकार से कर निदेश के साथ संबद्ध आवेदन अंग्रेजी भाषा में ही प्रस्तुत किया जाता रहेगा । पटना उच्च न्यायालय विशेष मामलों में हिंदी के कागजातों को अंग्रेजी में अनुदित किए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश पारित कर सकेगा ;

(iv) जहां पटना उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चय, डिक्री या आदेश हिंदी में पारित किए जाते हैं, तो पटना उच्च न्यायालय के प्राधिकारी द्वारा उनके अंग्रेजी में अनुवाद साथ में ही प्रस्तुत किए जाएंगे ।"

10. उपरोक्त अधिसूचना के परिशीलन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि अधिसूचना का प्रयोजन व्यापक भाव में समस्त उच्च न्यायालय में शपथ-पत्र के साथ आवेदनों के प्रस्तुतिकरण के प्रयोजनार्थ समस्त दांडिक और सिविल कार्यवाहियों में प्रथमतः हिंदी भाषा के प्रयोग को एक सामान्य नियम के रूप में अनुकल्पिक भाषा के रूप में उपलब्ध कराना है, **किंतु उक्त अधिसूचना में स्पष्टतः एक अपवाद सृजित किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के संबंध में रिट आवेदन अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाते रहेंगे ।**

11. तारीख 9 मई, 1972 की उपरोक्त अधिसूचना में उल्लिखित शब्द 'इसी प्रकार' को कर निदेशों और अनुच्छेद 226

और 227 के अधीन प्रस्तुत किए गए आवेदनों को एक साथ स्पष्टत: एक ही कोटि के अंतर्गत रखा गया है जो यह है कि आवेदन केवल अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत किए जाएंगे ।"

39. राज्य सरकार की ओर से इस दृष्टिकोण को परिवर्तित किए जाने और न्यायालय द्वारा जनवरी, 2019 से प्रदान किए गए लंबे अवसर के बाद यथास्थिति बनाए रखे जाने के प्रयोजनार्थ राज्य की ओर कोई इच्छा व्यक्त नहीं की गई है ।

40. अत: ऊपरनिर्दिष्ट उपबंधों के परिशीलन से यह साबित हो जाता है कि संवैधानिक सिद्धांत उस राष्ट्रीय भाषा के प्रयोग को प्रोन्नत किए जाने पर आधारित होते हैं जिसे सामान्य भाव में शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाता है अर्थात् हिंदी । अत:, संवैधानिक उपबंधों के साथ पढ़ें जाने पर आठवीं अनुसूची में हिंदी की जो हैसियत है, वह इसे शासकीय भाषा के रूप में प्रयोग किए जाने के पायदान, जिससे कि संपूर्ण राष्ट्र शासकीय कार्यों के प्रयोजनार्थ एक राष्ट्रीय राजभाषा के माध्यम से स्वीकृत रहे, पर पहुंचा देती है, अर्थात् हिंदी । अत: यही प्रस्तावना है जो देवनागरी लिपि में हिंदी भाषा के प्रयोग और प्रचार-प्रसार पर ध्यान केंद्रित करती है । संवैधानिक संघर्ष, जिसके कारण संविधान में अध्याय 17 और उसके परिणामस्वरूप होने वाले प्रभाव, आलोचना और अवरोधों के साथ प्रगति को भी सम्मिलित किया गया, पर प्रतिष्ठित संवैधानिक विशेषज्ञ एच. एम. सिरवाई द्वारा लिखित 'कान्स्टीट्यूसनल ला ऑफ इंडिया' के चौथे संस्करण के खंड 3 के अध्याय 23 में सामान्य विद्वत्तापूर्ण तरीके में चर्चा की गई है । इसके पैरा 23.1 से 23.15 तात्कालिक व्यापक अवलोकन, जैसाकि माननीय लेखक के विचारों से परावर्तित होता है, के प्रयोजनार्थ उद्धृत किए जाने योग्य हैं :–

"23.1 हमारे संविधान का भाग 17 'राजभाषा' पर विचार करता है । इस भाग का अध्याय 1 संघ की राजभाषा (अनुच्छेद 343 और 344) पर विचार करता है, अध्याय 2 प्रादेशिक भाषाओं (अनुच्छेद 345 से 347) पर विचार करता है, अध्याय 3 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों आदि की भाषा (अनुच्छेद 348

और 349) पर विचार करता है और अध्याय 4 विशेष निदेश (अनुच्छेद 350 और 351) पर विचार करता है । अनुच्छेद 343(1) उपबंधित करता है कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी और यद्यपि अनुच्छेद 351 विशेष निदेश है, इस बात पर सामान्यत: सहमति व्यक्त की गई है कि यह अनुच्छेद 343(1) में शब्द हिंदी की परिभाषा प्रस्तुत करता है । यह विलक्षण प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 351 में यह उपदर्शित हो कि नए शब्द प्राथमिक रूप से संस्कृत से चुने जाने चाहिए और तत्पश्चात् अन्य भाषाओं से, किंतु इस उपबंध का इतिहास हमको इस परिभाषा को समझने में समर्थ बनाता है यद्यपि इसको न्यायानुमत नहीं ठहराता । अनुच्छेद 351 में संस्कृत का निदेश और अनुसूची 8 में भारत की भाषाओं में से एक भाषा के रूप में उसके सम्मिलन को इस संक्षिप्त स्पष्टीकरण द्वारा स्पष्ट किया जाना अपेक्षित है । संस्कृत अत्यंत महत्वपूर्ण इंडो यूरोपीयन भाषाओं में से एक है जिससे भारत में बोली जाने वाली अनेक भाषाएं उत्पन्न हुई हैं । इसके बारे में कहा गया है कि –

> "भारत का प्राचीन उच्च साहित्य इस भाव में लगभग संपूर्ण रूप से कृत्रिम विकास की रचना है कि इसकी भाषा लोगों की सामान्य भाषा नहीं थी, बल्कि लघु और शिक्षित वर्ग की भाषा थी .... किंतु इस बात का कोई कारण ज्ञात नहीं है कि साहित्यिक भाषा को स्थानीय भाषा की विधिमानता के साथ भी भारत के लोगों की पहुंच से दूर क्यों रखा जाना चाहिए, जैसेकि अन्य स्थानों पर भी होता है और वह भी इस तथ्य के बावजूद कि कतिपय समय-बिंदु पर वह भाषा पूर्णतया स्थिर बनी रहती है और वर्णाकुलर उपभाषाओं को स्वयं से अधिक से अधिक मात्रा में प्रवाहित होने की अनुज्ञा प्रदान करती है ।" [इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1957) खंड 9 पृष्ठ 961-962].

भारत में मुगलों के आगमन और उनके साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण के साथ न्यायालयों और शासकीय कारबार की

> भाषा फारसी बन गई और उर्दू सैनिक शिविरों या बाजारों में बोली जाने वाली भाषा बन गई । तत्पश्चात, अंग्रेजों के आगमन और उनकी शक्तियों के सुदृढ़ीकरण के साथ ही अंग्रेजी शासकीय भाषा बन गई ।"

23.2 भाषाओं के संबंध में हमारे संविधान के उपबंध विधिक निर्वचन का कोई गंभीर प्रश्न नहीं उठाते किंतु उनके कारण गंभीर राजनीतिक समस्याएं अवश्यक उत्पन्न हुई हैं । यह इस मामले की परिधि के बाहर की बात है कि भाषा के बारे में विवाद के विभिन्न चरणों, जिनके परिणामस्वरूप हमारे संविधान का भाग 17 अधिनियमित किया गया, का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाए । पूर्णत: लिखित और सुस्पष्ट कारणोंवश ऐसा किया जाना आवश्यक भी नहीं है, जैसा कि आस्टिन, (ग्रेनविले आस्टिन द्वारा लिखित दि इंडियन कान्स्टीट्यूसन - कार्नरस्टोन आफ ए नेशन, पृष्ठ 264-307) द्वारा 'लैग्वेज एंड द कान्स्टीट्यूसन - द हाफ हार्टेड कम्प्रोमाइ' नामक अध्याय में लिखा गया है । इस अध्याय के अंतर्गत इस बाबत अध्ययन किया गया है और इसके प्रभाव के बारे में यह कहा जा सकता है : महात्मा गांधी ने राजनैतिक स्वातंत्र्य के अपने संघर्ष के दौरान राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न को उठाया था । उस समय उन्होंने इस भाषा को कभी हिंदी और कभी हिन्दुस्तानी के रूप में वर्णित किया था किंतु इन दोनों ही भाषाओं द्वारा उनका आशय जिस भाषा के बारे में था वह न तो संस्कृत पर आधारित हिंदी थी और न ही फारसी पर आधारित उर्दू बल्कि दोनों का सम्मिश्रण थी जिसको या तो देवनागरी में और या फारसी लिपि में लिखा जाता था । तथापि, भाषा के प्रश्न पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया जब तक कि इस प्रश्न को संविधान सभा पर नहीं थोपा गया । राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक आधारों पर राष्ट्रीय भाषा के लिए जनसामान्य की सामान्य रूप से मांग थी । किंतु कठिनाइयां उस समय दृश्यमान हो गईं जब उस मांग को संवैधानिक उपबंधों में परिवर्तित किया जाना था । निर्विवाद रूप से भारतीयों के मध्य एकता की आवश्यकता थी और अंग्रेजी ने उत्तर भारतीयों, जिनकी भाषा संस्कृत या फारसी से अभिप्राप्त थी और दक्षिण के लोग, जो

द्रविड़ भाषाएं जो संस्कृत या फारसी से अभिप्राप्त नहीं थीं, को एकता के सूत्र में पिरोने के द्वारा उस आधारी एकता की पूर्ति कर दी थी । भारत के विभाजन तक देवनागरी और फारसी लिपि में हिंदुस्तानी का ही बोलबाला था । भारत के विभाजन के साथ ही हिंदुस्तानी का प्रयोग भी समाप्त हो गया था, यद्यपि महात्मा गांधी ने कहा था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और किसी ऐसी भाषा के बारे में दृढ़ हो जाना चाहिए जो लोगों के वृहत्तर समूह द्वारा बोली जाती हो । यद्यपि हिंदी का चयन शासकीय भाषा के रूप में किया गया, किंतु इसको राष्ट्रभाषा के रूप में वर्णित नहीं किया जा सका चूंकि यह देश के सभी भागों में सामान्य रूप से बोली जाने वाली भाषा नहीं थी और यद्यपि देश के वृहत्तर एकल समूह द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी, किंतु वह वृहत्तर समूह भारत में लोगों की बहुसंख्या गठित नहीं करता था । इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषाएं भी थी जैसेकि बंगाल में बंगाली, मद्रास में तमिल, तत्कालीन बाम्बे राज्य में मराठी और गुजराती, जिनको अधिसंख्या जनसंख्या द्वारा बोला जाता था और जिनके बारे में यह दावा किया जाता था कि वे हिंदी से ज्यादा विकसित भाषाएं हैं और इसीलिए उनको शासकीय भाषाओं के रूप में वर्णित किया जाता था । संविधान सभा में हिंदी भाषा के समर्थक सर्वसम्मति, जिसके आधार पर विधान सभा कार्य कर रही थी, के आधार अधित्येजित करने के लिए तैयार थे ; किंतु उनके इस आत्यंतिक तरीके के कारण प्रतिक्रिया भड़क उठी और कुछ लोगों जिन्होंने पहले उनका समर्थन किया था, ने अपना समर्थन वापस ले लिया । कांग्रेस पार्टी के नेताओं, जिन्होंने सरकार का गठन किया था, ने उदारता अपनाने की सलाह दी चूंकि वे उन कठिनाइयों के अत्यधिक नजदीक आ गए थे जो अंग्रेजी से भारतीय भाषा में परिवर्तन के संक्रमण काल के दौरान अंतर्वलित थीं । एक अवस्था में तो ऐसा प्रतीत हुआ कि एकता, जो संविधान सभा में विद्यमान थी, भाषा से संबंधित उपबंधों के कारण भंग हो जाएगी । यह एक अधूरे मन से किया गया समझौता था चूंकि इस समझौते ने किसी भी पक्ष को ऐसा कुछ नहीं दिया जिसे वे चाहते थे ।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा में कहा कि वे हिंदी को शासकीय भाषा के रूप में स्वीकार नहीं करते यदि इस बाबत अभिव्यक्त उपबंध नहीं बनाए जाते कि हिंदी से हिन्दुस्तानी को पृथक् नहीं किया गया है और यह प्रबुद्ध वर्ग की भाषा नहीं है और हिंदी को सभी भाषाओं से शब्दों का सम्मिश्रण करते हुए भारत के सम्मिश्रित संस्कृति पर आधारित होना चाहिए । पंद्रह वर्ष की अवधि प्रदान की गई थी जिसके दौरान अंग्रेजी को बने रहना था किंतु यह लचीली अवधि थी और संसद् इसमें बढ़ोत्तरी कर सकती थी । अंकों के बाबत संघर्ष 'भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप' के पक्ष में स्थिरीकृत हुआ - जो अरबी अंकों के लिए एक परंतुक के साथ कि पंद्रह वर्षों के पश्चात् संसद् विधि द्वारा उन प्रयोजनों के लिए जिन्हें विनिर्दिष्ट किया जाए, अंकों के देवनागरी स्वरूप के प्रयोग के लिए प्रावधान करेगी, कठोर शब्दों के स्थान पर मधुर शब्दों का प्रयोग था ।

23.3 हमारे संविधान में संघ को दिए गए स्थान को ध्यान में रखते हुए संघ की शासकीय भाषा के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता । यह लोक प्रशासन की अखिल भारतीय भाषा और संघ लोक सेवाओं की आवश्यकता बन जाती है । क्योंकि इस बात को स्वीकार किया गया था कि हिंदी तत्कालिक प्रभाव से अंग्रेजी का स्थान लेने की स्थिति में नहीं है, इसलिए यह आवश्यक हो गया था कि इसके विकास के लिए प्रावधान किए जाएं और अनुच्छेद 344 के माध्यम से शासकीय भाषा पर एक आयोग और संसद् के दोनों सदनों की एक समिति के तंत्र की व्यवस्था हिंदी के विकास और अंग्रेजी के स्थान पर उसके विकासशील प्रतिस्थापन को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ की गई । अनुच्छेद 344(3) के अंतर्गत यह निर्देशिक किया गया है कि आयोग सिफारिश करते समय देश के औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति और लोक सेवाओं के संबंध में गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों से संबंध रखने वाले व्यक्तियों के हितों को भी ध्यान में रखेगा ।

इस उप अनुच्छेद में अनेक अर्हताएं समाविष्ट हैं और वि परिवर्तनकाल की प्रक्रिया में अंतर्वलित कठिनाइयों की ओर संकेत

करती हैं । बड़े औद्योगिक समुत्थान संपूर्ण भारत में कार्य करते हैं और इसलिए यदि प्रत्येक राज्य में क्षेत्रीय भाषाएं अभिभावी होती, तो देश के विभिन्न भागों में उस समुत्थान की विभिन्न शाखाओं के मध्य संसूचना की गंभीर समस्याएं उत्पन्न होंगी । कर्मचारियों की अंतरणीयता, जो किसी अपील भारतीय निगम में एक सामान्य व्यवस्था है, सिवाय सबसे निचले वर्ग के कर्मचारियों के नष्ट हो जाएगी । जहां तक देश की सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति का संबंध है, विवेक पर विवेक का प्रभाव और शिक्षा और वैज्ञानिक ज्ञान का स्वतंत्र आदान-प्रदान आवश्यक है, यदि व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अनदेखा किया जाए । इसमें कोई संदेह नहीं कि अनुच्छेद 351 यह सुझाव देता है कि कोई भी भाषा संस्कृत शब्दावली का आश्रय लिए जाने के द्वारा बनाई जा सकती है और संस्कृत के शब्दों को उसी के समतुल्य अंग्रेजी के शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है । किंतु भाषाएं शासन करने के प्रयोजनार्थ नहीं बनाई जा सकती और जब तक कि प्रयोग किए जाने वाले शब्द 'लोगों के कारबार और उनके अंतरंग मित्रों के साथ बातचीत की भाषा के उपयुक्त न हों' (बेकन द्वारा अपने निबंधों को समर्पित) और ऐसी लोगों के मस्तिष्क और हृदय पर कोई नियंत्रण नहीं रख सकेगी । संविधान का हिंदी वृत्तांत उपलब्ध कराए जाने का कार्य एक असाध्य कार्य साबित हुआ और उस कार्य का अधित्यजन करना पड़ा । (आस्टिन, अध्याय - 281-3, 285-7 '1948 के ग्रीष्मकाल तक हिंदी अनुवाद और साथ ही हिंदुस्तानी अनुवाद पूर्ण किया जा चुका था' । नेहरू जी ने इस अनुवाद की एक प्रति देखी और प्रसाद जी को लिखा 'वे इसका एक भी शब्द समझ नहीं सके' पृष्ठ 282) । उस समय के अभिभावी वातावरण में यह संभव नहीं था कि यूरोप द्वारा उपलब्ध कराए गए पाठ को पढ़ा जा सके अर्थात् यह कि एक शासन करने वाली भाषा का स्थान एक स्थानीय भाषा द्वारा केवल तब लिया जा सकता था जब उसका पर्याप्त रूप से विकास हो चुका होता और जनसामान्य की स्वीकार्यता प्राप्त हो चुकी होती । सदियों से लैटिन यूरोप में बुद्धिजीवी वर्ग के जीवन की वैश्विक भाषा थी । तत्पश्चात् फ्रेंच यूरोप की बोली जाने वाली भाषा बन गई, किंतु जैसे-जैसे जर्मन

और रूसी भाषाएं विकसित होती गईं, उन्होंने धीरे-धीरे जर्मनी और रूस में फ्रेंच का स्थान ले लिया ।

23.4 क्योंकि अनुच्छेद 343 में उल्लिखित 15 वर्ष की अवधि नजदीक आ रही थी, अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को प्रतिस्थापित किए जाने के प्रस्तावों को दक्षिण भारत में राष्ट्रपति महोदय के मद्रास के प्रस्तावित दौरे के अवसर पर हिंसक विरोधों की धमकियां मिलने लगी थीं । प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यह आश्वासन दिया कि अंग्रेजी को हिंदी द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जाएगा और तब तक यथास्थिति कायम रखी जाएगी जब तक कि गैर हिंदी भाषी लोग परिवर्तन नहीं चाहते । 1963 में राजभाषा अधिनियम को अधिनियमित किया गया जिसके द्वारा 26 जनवरी, 1965 के पश्चात् भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहा । इस अधिनियम के उपबंधों पर बाद में विचार किया जाएगा ।

23.5 अखिल भारतीय भाषा के विषय पर अत्यधिक मात्रा में साहित्य उपलब्ध है । हिंदी को प्रतिस्थापन का उद्देश्य इस पर आधारित था कि यह भाषा गैर हिंदी भाषी लोगों को शिक्षा, लोक सेवा और वृत्तियों के क्षेत्र में अत्यधिक अलाभकारी स्थिति में पहुंचा देगी । जबकि हिंदी वृहत्तर वर्ग की मातृभाषा होगी, जो देश के बहुसंख्यक भी हैं, गैर हिंदी भाषी लोगों को अपनी मातृभाषा के अलावा हिंदी को भी साहित्यिक या विदेशी भाषा के रूप में पढ़ना होगा । इस स्थिति से निपटने के लिए शिक्षा मंत्रालय ने मातृभाषा हिंदी और एक अन्य भाषा के रूप में अंग्रेजी, जो बाह्य संसार के साथ हमारे संपर्क को बनाए रखने में सक्षम थी, के अंतर्वलित करते हुए एक युक्ति निकाली जिसको 'त्रि-भाषी फार्मूला' कहा जाता है । यह फार्मूला उन लोगों, जिनकी मातृभाषा हिंदी है, एक अन्य भारतीय भाषा, अधिमानिक रूप से दक्षिण भारत की भाषा को पढ़े जाने को अंतर्वलित करता है । इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि इस कार्यक्रम का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हमको संपूर्ण देश के लिए एक सामान्य भारतीय भाषा प्रदान कर सकता था और हमको अंग्रेजी, जो विश्व की सर्वाधिक संपन्न और सर्वाधिक बोली जाने

वाली भाषाओं में से एक है और जिसकी जड़ें हमारी राजनैतिक, संसदीय, न्यायालयिक और शैक्षिक संस्थाओं में अत्यधिक गहरी हैं, के संसाधनों का लाभ उठाने के समर्थ बना सकता था ।

23.6 भाषा से संबंधित उपबंध शिक्षा और शिक्षा के माध्यम के प्रति निदेश नहीं करते किंतु उच्च शिक्षा के स्तरमानों के प्रति सामंजस्य और विनिर्धारण एक अनन्य संसदीय विधान का विषय है और चूंकि सूची 3 में प्रविष्टि 25 शिक्षा को समवर्ती विधान का विषय बनाती है (प्रविष्टि 25, सूची 3 : शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, चिकित्सीय शिक्षा और विश्वविद्यालयों को सम्मिलित करते हुए, सूची 1 की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण) और माननीय उच्चतम न्यायालय ने गुजरात विश्वविद्यालय **बनाम** कृष्ण रघुनाथ मधोलकर [1963] सप्ली. 1 एस. सी. आर. 112 = (1963) ए. एस. सी. 703 वाले मामले में पहले ही अभिनिर्धारित कर दिया है कि अनुदेश के अनिवार्य माध्यम के रूप में किसी क्षेत्रीय भाषा का अधिरोपण राज्य विधान-मंडलों की शक्तियों के परे है । यह निवेदन किया गया कि जब बम्बई जैसे बड़े शहर के लिए गठित विश्वविद्यालय को शासित करने वाले अधिनियम में यह अपेक्षा होती है कि शहर में चलने वाले प्रत्येक महाविद्यालय में विश्वविद्यालयीय उपाधियों के प्रयोजनार्थ छात्रों की तैयारी कराए जाने के लिए उस महाविद्यालय को किसी विश्वविद्यालय से सहबद्ध होना चाहिए, तो अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण किए बिना यह संभव नहीं होगा कि किसी क्षेत्रीय भाषा को अंग्रेजी के स्थान पर अनुदेशों के अनिवार्य माध्यम की भाषा के रूप में प्रतिस्थापित किया जाए । एक तरफ अंग्रेजी और हिंदी के मध्य और दूसरी तरफ अनुसूची 7 में उल्लिखित अन्य भाषाओं के मध्य विभेद यह है : अंग्रेजी विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुदेशों का वास्तविक माध्यम है । संविधान और राजभाषा अधिनियम ने इसके प्रयोग को भारत संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए जारी रखा है । इसलिए, अंग्रेजी ऐतिहासिक कारणोंवश और अभिव्यक्त संवैधानिक और विधायी उपबंधों के कारण अपने आप में एक वर्ग गठित करती

है । हिंदी भी अपने आप में एक स्थिति प्राप्त करती है । यह भारत संघ की शासकीय भाषा है और संविधान के अंतर्गत यह अनुध्यात किया गया है कि यह भाषा अंग्रेजी को धीरे-धीरे प्रतिस्थापित करेगी । इसलिए हिंदी भी अपने आप में एक वर्ग गठित करती है । किंतु अनुसूची 8 में उल्लिखित अन्य भाषाएं भिन्न आधार पर अस्तित्व में हैं । अंग्रेजी भाषा को एक माध्यम के रूप में बनाए रखा जाना न्यायसंगत है और उसको हिंदी द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने को ऊपर वर्णित कारणोंवश न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता । किंतु अंग्रेजी के स्थान पर किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा को प्रतिस्थापित किए जाने को न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि ऐसी भी अन्य भाषाएं हो सकती हैं जिनको लोगों के बड़े समूहों द्वारा बोला जाता है और जो विश्वविद्यालयों में अनुदेशों का माध्यम बनने के प्रयोजनार्थ पूर्णतया समर्थ हैं । चूंकि शहर में बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जिनकी मातृभाषा मराठी, गुजराती, हिंदी, तमिल, मलयालम और उर्दू हैं, अनुदेशों के माध्यम के रूप में अन्य भाषाओं को अपवर्जित करते हुए इन भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं के चयन को न्यायसंगत ठहराया जाना कठिन होगा, यदि चयन का सिद्धांत यह है कि विश्वविद्यालयीय शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए ।

23.7 जहां तक किसी विशिष्ट क्षेत्र में धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यकों का संबंध है, एक भिन्न प्रश्न उत्पन्न होता है अर्थात् क्या किसी भाषा को उससे संबद्ध प्रत्येक महाविद्यालय को इस बाबत विवश किए जाने के द्वारा कि उस महाविद्यालय की शिक्षा के माध्यम की व्यवस्था के बाबत संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता यदि व्यवस्था द्वारा बताए गए माध्यम को लागू नहीं किया जाता, विश्वविद्यालयीय शिक्षा का अनिवार्य माध्यम बनाया जा सकता है । श्री कृष्ण **बनाम** गुजरात विश्वविद्यालय [(63) ए. गुजरात 88] वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि न तो राज्य और न ही विश्वविद्यालय को इस प्रकार की कोई शक्ति प्राप्त है क्योंकि इस प्रकार से किसी अनिवार्य माध्यम को अधिरोपित किया जाना

अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30 का अतिक्रमण होगा । ये अनुच्छेद अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों को संरक्षण प्रदान किए जाने के लिए आशयित हैं । पूर्ण न्यायपीठ ने 1957 के केरल शिक्षा विधेयक [1969] एस. सी. आर. 995 = (58) ए. एस. सी. 958 वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को इस प्रतिपादना के समर्थन में निर्दिष्ट किया कि इस प्रकार से प्रदत्त किए गए अधिकारों का अर्थ वास्तविक संस्थाओं, जो समुदाय और विद्वानों जिन्होंने ऐसी शिक्षा का आश्रय लिया, की आवश्यकताओं को प्रभावी रूप से पूर्ण करेंगे, को स्थापित करने के अधिकार के अर्थ के रूप में निकाला जाना चाहिए । यह निवेदन किया गया कि यह विनिश्चय सही है । जैसाकि हमने देखा है इस विचार की पुष्टि उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई है । देखें इस संस्करण के खंड 2 के पैरा 13.21, 13.22 और 13.58 ।

23.8 इस पुस्तक के प्रथम संस्करण (मई, 1967) में यह अभिकथित था, 'चूंकि यह पुस्तक अब प्रेस को जा रही है, विश्वविद्यालय आयोग ने अनुदेश के माध्यम के रूप में त्रि-भाषीय फार्मूला के स्थान पर क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की सिफारिश की है, किंतु शिक्षा मंत्रालय ने इस सिफारिश को एक निराशाजनक सलाह के रूप में देखा है और अभिनिर्धारित किया है कि त्रि-भाषीय फार्मूला को क्रियान्वित किया जाना चाहिए । अत: वे समस्याएं जिनको उठाया गया है, कठिन हैं क्योंकि राष्ट्रीय एकता के लिए दृढ़ इच्छा के साथ-साथ शासकीय प्रयोजनों के लिए विभिन्न राज्यों की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग के प्रयोजनार्थ अनुच्छेद 345 से 347 के उपबंधों पर भी विचार किया जाना चाहिए और जो बात अधिक महत्वपूर्ण है, यह है कि अनुच्छेद 1 से 5 के अधीन भारत के मानचित्र को भाषाई आधार पर पुन: रेखांकित किया गया है । यह समस्या और भी अधिक जटिल है क्योंकि भारत में एक सामान्य न्याय प्रशासन प्रणाली विद्यमान है और उच्च न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को प्रस्तावित किए जाने पर वह प्रणाली पूर्णतया नष्ट हो जाएगी और उच्चतम न्यायालय द्वारा किए जा रहे एकीकरण के प्रयासों को असंभव बना देगी । इसलिए अनुच्छेद 348 में उच्चतम

न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा के लिए विशेष उपबंध इस बात को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ समाविष्ट हैं कि विधि का एक समान प्रशासन क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग द्वारा संभव नहीं हो सकता ।' तारीख 31 अगस्त, 1967 को भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री श्री एम. सी. छागला, जो पहले शिक्षा मंत्री भी रह चुके थे, ने अंग्रेजी से हिंदी में प्रस्तावित परिवर्तन में अंतर्वलित शैक्षिक नीति के संबंध में लिए गए विनिश्चय, जिसको उन्होंने उस नीति को पूर्णतया उलटा जाना माना जिसको उन्होंने ही शिक्षा मंत्री के रूप में आगे बढ़ाया था और जिसको मंत्रिमंडल द्वारा स्वीकार किया गया था, के विरुद्ध मंत्रिमंडल से अपना त्याग-पत्र दे दिया [एम. सी. छागला द्वारा लिखित रोजेज इन दिसंबर : एन आटोबायोग्राफी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ 430-431 । नई नीति के संबंध में उनके आक्षेप उनके त्याग-पत्र में वर्णित हैं जो उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ 504-506 उपलब्ध हैं] । जहां तक मैं इस बात को अभिनिश्चित कर पाने में समर्थ हूं, विरोध में बनाई गई नीति जिसके कारण श्री छागला को त्याग-पत्र देना पड़ा, के संबंध में बहुत कम प्रगति हुई या यह कहा जाए कि बिल्कुल प्रगति नहीं हुई ।

23.9 1963 की राजभाषा अधिनियम की धारा 3 निम्नलिखित है –

> '**3. संघ के राजकीय प्रयोजनों और संसद् में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का बना रहना** – (1) संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही, – (क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए यह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती है ; तथा (ख) संसद् में कार्य के संव्यवहार के लिए प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी ।'

अधिनियम की धारा 4 तारीख 26 जनवरी, 1965 के पश्चात् 10 वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने पर राजभाषा पर एक समिति के गठन के लिए उपबंधित करती है । इस समिति में संसद् के 30 सदस्य समाविष्ट होते हैं जिनमें से 20 सदस्य लोकसभा के और

10 सदस्य राज्यसभा के होते हैं । इस समिति को शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी की प्रगति का पुनर्विलोकन करना होता है और राष्ट्रपति के समक्ष अपनी सिफारिशों के साथ एक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है और राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को संसद् के समक्ष प्रस्तुत करवाते हैं और समस्त राज्य सरकारों को भेजते हैं । राष्ट्रपति राज्य सरकारों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों पर, यदि कोई हों, विचारोपरांत समिति की संपूर्ण रिपोर्ट या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश जारी कर सकते हैं । धारा 5 केंद्रीय अधिनियमों के हिंदी में अनुवाद के लिए प्राधिकृत करती है । धारा 6 उन राज्यों जहां अधिनियम किसी अन्य भाषा में पारित किए गए हैं, में अंग्रेजी अनुवाद के अलावा हिंदी अनुवाद प्राधिकृत किए जाने की अपेक्षा करती है । धारा 7 इस अपेक्षा के अध्यधीन रहते हुए कि उच्च न्यायालय के प्राधिकार के अंतर्गत जारी निर्णय या डिक्रियों के साथ अंग्रेजी का अनुवाद संलग्न होगा, हिंदी या किसी अन्य राजभाषा के वैकल्पिक प्रयोग के लिए उपबंधित करती है । यह केवल तब हो सकता है जब राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति के साथ इस प्रकार के प्रयोग के लिए प्राधिकृत करता हो । धारा 4 इस भिन्नता के अलावा कि समिति को भाषा आयोगों द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्टों में समाविष्ट सिफारिशें करने के बजाय स्वयं ही सिफारिशें करनी हैं, अनुच्छेद 344(1) के समान है ।

जहां तक उच्च न्यायालयों का संबंध है अनुच्छेद 348(1) उपबंधित करता है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में समस्त कार्यवाहियों की भाषा अंग्रेजी होगी । अनुच्छेद 348(2) राज्यपाल को राष्ट्रपति की पूर्व सहमति के साथ उस राज्य के उच्च न्यायालयों में हिंदी या राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करता है । तथापि, उच्च न्यायालय के निर्णय और डिक्रियां अंग्रेजी में पारित किया जाना अपेक्षित है । 1963 की अधिनियम की धारा 7 इन उपबंधों को समाप्त करती है, जहां तक निर्णयों और डिक्रियों का संबंध है और इसके स्थान पर इस अपेक्षा को प्रतिस्थापित करती है कि उच्च न्यायालय द्वारा

पारित निर्णय और डिक्रियों के साथ उनका अंग्रेजी अनुवाद संलग्न होना चाहिए जो उच्च न्यायालय द्वारा प्राधिकृत होना चाहिए ।

23.10 यदि न्यायालयिक प्रशासन, न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं के मध्य एकता को परिरक्षित किया जाना है तो इस बात की आशा की जानी चाहिए कि इस प्रकार की कोई अनुज्ञा नहीं दी जाएगी । सूची 1 की प्रविष्टि 78 अभिव्यक्त रूप से उच्च न्यायालयों के समक्ष विधि वृत्ति करने के हकदार व्यक्तियों के संबंध में विधान बनाने की शक्ति संसद् को प्रदान करती है । 1961 के अधिवक्ता अधिनियम ने भारत में एकीकृत स्वायत्ता प्राप्त बार सृजित किए जाने के लिए उपबंधित किया है । आज विधि वृत्ति एक ऐसी एकीकृत वृत्ति है जो संपूर्ण भारत में की जा सकती है । यदि विभिन्न उच्च न्यायालयों की भाषाएं भिन्न होंगी, तो संपूर्ण भारत में विधि वृत्ति करने का अधिकार व्यावहारिक रूप से अवास्तविक हो जाएगा और प्रत्येक उच्च न्यायालय अपनी ही भाषा के अवरोध द्वारा अलग-थलग पड़ जाएगा । वह अन्य न्यायालयों के निर्णयों और केंद्रीय विधियों के सामान्य निर्वचन से प्राप्त होने वाली सहायता से भी वंचित हो जाएगा, जो न्यायिक प्रशासन के प्रयोजनार्थ अत्यधिक वांछनीय होते हैं और पूर्णतया पहुंच के बाहर हो जाएगी । उच्चतम न्यायालय का कार्य और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति भी गंभीर रूप से प्रभावित होगी क्योंकि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियां उन उच्च न्यायालयों से नहीं हो सकेंगी जहां उच्चतम न्यायालय में बोली जाने वाली भाषा से भिन्न भाषा में कार्य होता है । न्यायिक प्रशासन पर उच्चतम न्यायालय को एकीकृत करने वाला प्रभाव भी यदि पूरी तरह से नष्ट न हो, तो भी गंभीर रूप से प्रभावित होगा और न्यायाधीशों और उनके द्वारा पारित किए जा रहे निर्णयों की गुणवत्ता भी आवश्यक रूप से प्रभावित होगी ।

23.11 हमारे संविधान और 1963 के राजभाषा अधिनियम के उपबंध किस प्रकार से संविधान के अन्य उपबंधों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं ? हमने ऊपर कहा है कि विभिन्न उच्च

न्यायालयों में विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग न्याय के प्रशासन, जिसको अभी तक भारत में न्यायालयिक प्रशासन के रूप में चित्रित किया गया है, उच्च न्यायालयों के अखिल भारतीय स्वरूप को प्रभावी ढंग से नष्ट कर देगा और उन उपबंधों को भी विफल कर देगा जिनके अधीन एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का स्थानांतरण दूसरे उच्च न्यायालय को किया जा सकता है । हमारे संविधान में अखिल भारतीय सेवाओं के अंतर्गत तभी कार्य किया जा सकता है यदि भारत के संपूर्ण राज्य क्षेत्र के भीतर प्रशासन की एक सामान्य भाषा विद्यमान हो । इन सेवा के सदस्य स्थानांतरण के अधीन होते थे और हैं और उनकी सेवा की स्थानांतरण की प्रकृति व्यावहारिक रूप से अवास्तविक हो जाएगी चूंकि किसी भी सिविल सेवक से यह प्रत्याक्षा नहीं की जा सकेगी कि वह भारत संघ की 15 भाषाओं का जानकार हो और उनमें प्रवीण भी हो । अखिल भारतीय सेवाओं में नियुक्तियों में भी निराकरण न किए जाने योग्य समस्याएं उत्पन्न होंगी चूंकि 15 भाषाओं में संचालित की जाने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं की निगरानी भी जुआ खेलने के समान हो जाएगी चूंकि 15 भाषाओं में छात्रों के प्रदर्शन का मूल्यांकन व्यावहारिक रूप से एक संभाव्यता ही होगा ।

23.12 हमारे संविधान ने संपूर्ण भारत में एकल भारतीय नागरिकता स्थापित की । अनुच्छेद 19 प्रत्येक नागरिक को भारत राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का और भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भी भाग में निवास करने और संपत्ति अर्जित करने, उसको धारण करने और उसका निस्तारण करने का मूल अधिकार प्रदान करता है । जैसाकि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गोपालन** वाले मामले [1950] एस. सी. आर. 88 = (50) ए. एस. सी. 27 में मताभिव्यक्ति की है, ये उपबंध प्रांतीय अवरोधों को हटाए जाने और इस बात को सुनिश्चित किए जाने के लिए आशयित हैं कि भारत के सभी नागरिक एक ही देश के नागरिक हों, वे देश के किसी भी भाग में संचरण करने, कार्य करने, जीवन-यापन करने और निवास करने के लिए स्वतंत्र हों । वे संविधान के अनुच्छेद 15 समानता में

धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के मध्य किसी भी प्रकार के पक्षपात को निषेधित करते हैं । इस सूची में भाषा सम्मिलित नहीं हैं किंतु भाषा के आधार पर किसी भी प्रकार का पक्षपात भारत की एकता की आधारी संकल्पना, जिसको एक सामान्य भारतीय नागरिक और सामान्य देश प्रमाणित करते हैं, के विरुद्ध है । इस बात को अनेकों बार कहा गया है कि हमारा संविधान द्विराष्ट्र सिद्धांत, जिससे पाकिस्तान का जन्म हुआ, को सुस्पष्ट रूप से अस्वीकार करके अस्तित्व में आया अर्थात् मूलवंश, धर्म और भाषा के आधार पर विभेद एक पृथक् राष्ट्र को स्थापित किए जाने के दावे के समर्थन के लिए पर्याप्त होते हैं । वास्तव में यह आश्चर्यजनक विलक्षण होगा द्विराष्ट्र सिद्धांत को अस्वीकार किए जाने के पश्चात् भी भाषाई उपबंध और उनके क्रियान्वयन के कारण केवल भाषा के ही आधार पर हमको 10 या 12 राष्ट्र सिद्धांत को स्वीकार किए जाने की ओर ले जाते हों ।

23.13 यदि संविधान को उसी भावना में कार्य करना है जिस भावना के साथ इसका जन्म हुआ, तो यह आवश्यक है कि एक सामान्य भाषा को स्थापित होना चाहिए जिस स्थान पर अंग्रेजी ने स्वतंत्रता से पहले ही कब्जा कर लिया था और संविधान अधिनियमित किए जाने के पश्चात् भी प्रथम 15 वर्षों की अवधि के दौरान उस स्थान पर उसका कब्जा बना रहा । क्या यह एक क्षणिक मामला है कि एक सामान्य भारतीय भाषा किसी विनिर्दिष्ट समयावधि, लघु या वृहत में अंग्रेजी का स्थान ले सकती है । किंतु यह वृहत्तर कालीन मामला है कि कोई सामान्य भारतीय भाषा संघ और राज्यों की राजभाषा के रूप में ले, समस्त विश्वविद्यालयों में अनुदेश के माध्यम के रूप और वैज्ञानिक और औद्योगिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अंग्रेजी का स्थान ले, यदि अंग्रेजी के माध्यम से अभिप्राप्त की गई भारत की एकता को विफल नहीं करना है । [भाषा को एकीकृत करने और विभाजन करने वाली शक्ति को शायद ही टावर आफ बेबेल के अध्याय में अधिक विविधतापूर्वक

चित्रित किया गया हो (जेनेसिस XI) : एक ऐसा समय था जब संपूर्ण विश्व में एक एकल भाषा बोली जाती थी जब मनुष्यों ने एक नगर के निर्माण का निर्णय लिया जिसमें एक टावर का भी निर्माण किया जाना था जिसका शीर्ष भाग स्वर्ग में स्थापित होना था और तब ईश्वर ने देखा कि नगर और टावर का निर्माण हो रहा है और उसने कहा 'ये हैं वे, एक ही भाषा बोलने वाले एक ही प्रकार के लोग और अब उन्होंने ऐसा करना आरंभ कर दिया है और अब उनका मस्तिष्क उनको ऐसे कार्य की ओर ले जा रहा कि कुछ भी उनकी पहुंच से दूर नहीं होगा और इसलिए हमको नीचे जाना चाहिए और उनकी भाषा में भ्रम उत्पन्न करना चाहिए ताकि वे उन बातों को समझ ना सकें जो वे एक दूसरे से करते हैं ।' अत: उनकी अर्थात् मनुष्यों की भाषा में भ्रम उत्पन्न हो गया, वे एक दूसरे को समझ पाने में असमर्थ हो गए, वे पृथ्वी के सतह पर बिखर गए और उनका शहर और टावर अनिर्मित रह गए ।

23.14 अध्याय 4 में अल्पसंख्यकों के हितों को सुनिश्चित करने और उनको संरक्षण प्रदान किए जाने के लिए बनाए गए विशेष निदेश समाविष्ट हैं । अनुच्छेद 350 प्रत्येक व्यक्ति को किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी के समक्ष यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने के लिए हकदार बनाता है । अनुच्छेद 350क में यह निदेश समाविष्ट है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा । अनुच्छेद 350ख संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए रक्षोपाय उपबंधित किए जाने से संबंधित मामलों पर अन्वेषण किए जाने के प्रयोजनार्थ भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाने के लिए उपबंधित करता है । अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश समाविष्ट हैं जिन पर पहले ही विचार किया जा चुका है ।

23.15 दया भाई **बनाम** नटवर लाल [(57) ए. एम. पी. 1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 345 के परंतुक का प्रभाव यह है कि राज्य द्वारा किसी क्षेत्रीय भाषा या हिंदी के अंगीकरण के पश्चात् भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रह सकता है जब तक कि राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा रूप से उपबंधित न कर दे, अर्थात् यह कहा जाना चाहिए कि अंग्रेजी के प्रयोग को अभिव्यक्त रूप से विवर्जित न कर दे । यह अभिनिर्धारित किया गया कि 1950 का मध्य भारत राजभाषा अधिनियम उस परंतुक के अर्थान्तर्गत अन्यथा रूप से कुछ भी उपबंधित नहीं करता । [आई. वी. आई. डी. पृष्ठ 3-4 हरिहर प्रसाद **बनाम** जिला मजिस्ट्रेट (61) ए. ए. 365, 368 वाले मामले को भी देखें]

41. अतः राजभाषा के प्रयोग और साथ ही उच्च न्यायालय में उस भाषा के प्रयोग के बाबत उक्त विचार-विमर्श का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है चूंकि संपूर्ण देश के सभी न्यायालयों में विधिवृत्ति करने के अधिवक्ताओं के अधिकार और साथ ही संविधान के अनुच्छेद 222 के अधीन किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्थानांतरण के प्रश्न का अनदेखा नहीं किया जा सकता । आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन शर्तों को पूर्ण किए जाने के अध्यधीन रहते हुए अनुकल्प की भाषा के रूप में किया जा सकता है किंतु अंग्रेजी, जो आज भी देश के समस्त उच्च न्यायालयों में प्रयोग की जाने वाली सामान्य भाषा के रूप में स्थान बनाए हुए है, को हटाए जाने का अनदेखा नहीं किया जा सकता । इस पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए कि यद्यपि राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार और संघ में और बड़ी संख्या में राज्यों के शासकीय कार्यों में इसको अपनाए जाने से इसका विकास हुआ है किंतु जहां तक न्यायपालिका का संबंध है, देश के समस्त उच्च न्यायालयों और साथ ही उच्चतम न्यायालय में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग हो रहा है । अंग्रेजी भाषा में विधिक अभिव्यक्तियों की व्यापक उपलब्धता को हिंदी समेत किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा में अभी तक प्रभावी रूप से प्रतिस्थापित नहीं किया गया है ।

42. इस बात को विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए कि भाषा का प्रयोग एक प्रथा का मामला होना चाहिए और इसको बाल्यावस्था से किशोरावस्था और उसके परे मन में बैठाया जाना चाहिए । इसमें घर, विद्यालय और कार्यालय कार्यक्रम में भाषा का प्रयोग सम्मिलित है । किसी संघीय ढ़ांचे में कार्यपालिका हिंदी भाषा के प्रयोग को बड़े स्तर तक प्रयोग कर पाने और संघ के समस्त मामलों में उसके क्रियान्वयन को प्रवर्तित कर पाने में सफल रही है किंतु हमारे संविधान में उत्कीर्ण की गई संघीय संरचना को ध्यान में रखते हुए सभी राज्य अपनी स्थानीय क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग कर रहे हैं, जिनमें विविधता है और इसलिए उनको आठवीं अनुसूची, जिसमें 22 भाषाएं समाविष्ट हैं, के अंतर्गत शासकीय रूप से मान्यता प्रदान की गई है ।

43. क्या उच्च न्यायालय में भाषा के प्रयोग पर पुन: विचार करते हुए और संपूर्ण देश में न्यायालयों में बोले जाने वाली भाषा के क्षेत्रीय स्वरूप को मान्यता प्रदान करते हुए हिंदी में प्रवीण किसी अधिवक्ता के लिए यह संभव होगा कि वह अपने किसी मामले में हिंदी में प्रभावी ढंग से और तत्परतापूर्वक दलीलें दे सके, जैसेकि केरल उच्च न्यायालय में जहां हिंदी न्यायालय की शासकीय भाषा नहीं है । इसी स्थिति पर सभी राज्यों, जो विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित हैं, के संबंध में विचार किया जा सकता है । हिंदी के प्रयोग को उत्तर भारत के बड़े भाग, जिसमें विभिन्न राज्य समाविष्ट हैं जैसेकि राजस्थान, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और बिहार में व्यापक रूप से नैसर्गिक मान्यता प्राप्त है, किंतु जैसे ही कोई व्यक्ति इन राज्यों की सीमाओं को लांघता है, न्यायालयीय भाषा के रूप में संसूचना की यह स्वीकार्यता घट जाती है और स्थानीय क्षेत्रीय भाषाएं अभिभावी हो जाती हैं । हमारा यह कहना नहीं है कि हिंदी के विकास को रोका जाना चाहिए और उसको प्रोन्नत नहीं किया जाना चाहिए किंतु यह एक व्यावहारिक दृष्टिकोण है जिस पर संविधान के निर्माताओं द्वारा विचार किया गया था और राष्ट्रीय शासकीय भाषा के उद्देश्य को अभिप्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ समुचित उपबंध बनाए गए थे ।

44. इसके प्रतिकूल, किसी न किसी रूप में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को मंजूर करने का हस्तक्षेपी दृष्टिकोण अभिभावी सामान्य बातचीत में

सहायक है जो कि पूरे देश के सभी न्यायालयों में स्वीकार्य है । इस प्रकार, अंग्रेजी भाषा का सार्वजनिक रूप से स्वीकार किए जाने का उद्देश्य किसी न किसी रूप में विचारों की अभिव्यक्ति से संबंधित एकरूपता कायम रखना है और ऐसी भाषा का प्रयोग करना है जो सर्व-स्वीकृत भाषा है विशेषकर विधि क्षेत्र में । उदाहरण के लिए, ऑल इंडिया सर्विस (आकाशवाणी सेवा) या केन्द्रीय अधिनियम की शक्तिमत्ता से संबंधित देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों में मामले चलाए गए जिन्हें परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और उन मामलों में जो अभिवाक् किए गए थे और विधिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया था, अंग्रेजी भाषा में थे । उच्चतम न्यायालय के समक्ष दी गई सभी दलीलें अंग्रेजी भाषा में थीं और यह ध्यान में रखना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय द्वारा बहुत पहले इस संबंध में मत व्यक्त किया जा चुका है । **मधु लिमये और एक अन्य** बनाम **वेद मूर्ति और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्न रूप में हिन्दी भाषा में बहस करने के लिए मांगी गई अनुज्ञा को खारिज कर दिया :–

> "श्री राज नारायण ने कल हिन्दी भाषा में बहस करने के लिए आग्रह किया है । उन्हें हिन्दी भाषा में बहस करने के लिए थोड़ी देर के लिए इसलिए सुना गया था कि हम यह जान सकें कि हमें उनकी बहस समझ आती है या नहीं, वह भी मात्र इस कारण से हिन्दी भाषा में बहस सुनी गई कि यह किसी नागरिक की स्वतंत्रता से संबंधित बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका का मामला है । मामले की महत्ता को ध्यान में रखते हुए, हमने थोड़ी देर उनकी सुनवाई की किन्तु श्री दफ्तरी (महान्यायवादी) ने उनका विरोध किया और साथ ही न्यायपीठ के सदस्यों में से कुछ सदस्य श्री राज नारायण द्वारा कल हिन्दी में दी गई दलीलों को नहीं समझ सके । इन परिस्थितियों में, श्री राज नारायण को हिन्दी में बहस करने के लिए अनुज्ञात करना व्यर्थ होगा । श्री राज नारायण के साथ पहले से ही श्री डी. आर. सिंह पेश हो रहे हैं । हम निम्न तीन विकल्पों का सुझाव देते हैं –

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2608.

(क) श्री राज नारायण अंग्रेजी भाषा में बहस कर सकते हैं ; या

(ख) वे अपने काउंसेल को बहस करने के लिए अनुज्ञात कर सकते हैं ; या

(ग) वे अंग्रेजी भाषा में लिखित दलीलें प्रस्तुत कर सकते हैं ।

इस न्यायालय की भाषा अंग्रेजी है (संविधान का अनुच्छेद 348 देखिए) । यदि श्री राज नारायण इन सुझावों से सहमत नहीं हैं, और हम जानते हैं कि वे सहमत नहीं होंगे, तब केवल हमारे समक्ष एक ही विकल्प रहता है कि हम उन्हें बहस करने में हस्तक्षेप न करने दें । हम तद्नुसार आदेश करते हैं ।"

45. तथापि, पूर्वोक्त निर्णय उच्चतम न्यायालय के पूर्वोक्त नियम पर आधारित है किन्तु यह तथ्य उल्लेखनीय है और ध्यान में रखना चाहिए कि जब उच्च न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा उठाया गया है, तभी इसे उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है । ऐसे युग में जब न्याय के लिए अधिकार या मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिकाओं का फाइल किया जाना, पूरे देश में उच्च न्यायालयों के समक्ष रिट अधिकारिता का अवलंब लेना जैसे कार्यों को भाषा की एकरूपता को ध्यान में रखते हुए पूरा करना चाहिए और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसे मामलों में विचार के लिए सार्वजनिक मुद्दे ही उठाए जाते हैं । ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाना जिससे विचारों का आदान-प्रदान सुकर बनाया जा सके जनता के हित में होता है ।

46. न्यायालय की भाषा का प्रयोग किए जाने का उद्देश्य अत्यंत महत्वपूर्ण है विशेषकर उच्चतर न्यायालयों में जहां न्यायालय को विधि का निर्वचन करना होता है जो उस समय इस प्रकार विद्यमान होती है कि उसका संबंध अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भिन्न-भिन्न देशों की भागीदारी से होता है । अपराध शास्त्र हो या व्यावसायिक विधि या हो मानव अधिकारों से संबंधित ऐसी विधि जो नागरिकों के प्राण को प्रभावित कर सकती है, इन सभी के विरचित किए जाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संधि और प्रसंविदा का कार्यान्वित किया जाना आवश्यक है जिसका संबंध स्थानीय विधि से भी होता है । अतः ऐसी विधि विश्वव्यापी होती है और

जिसका सीधा संबंध समुचित भाषा के साथ होता है और यह भाषा सार्वत्रिक रूप से स्वीकार की जानी चाहिए ।

47. हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि न्यायालय में किसी भाषा का पुरःस्थापित किए जाने का सीधा संबंध इस बात से होना चाहिए कि विधि के छात्रों को उस भाषा में विधि समझने का अवसर प्राप्त हो सके और वे प्रभावपूर्ण रूप से न्यायालय में और उसके बाहर अपने कार्य का निर्वहन कर सकें । यही कारण है कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम की अनुसूची-II के अधीन विहित पाठ्यक्रम में स्पष्ट रूप से विधि पाठ्यक्रमों, चाहे वे तीन-वर्षीय हों या पांच-वर्षीय हों, के शिक्षण की भाषा को अंग्रेजी भाषा के रूप में विहित किया गया है । भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम के भाग-IV के अध्याय-VI की अधिसूचना-II के खंड 1 में निम्न प्रकार उद्धृत किया गया है :-

> "(1) **शिक्षण का माध्यम** – दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों अर्थात् तीन-वर्षीय और पांच-वर्षीय पाठ्यक्रमों में शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी भाषा होगा । तथापि, यदि कोई विश्वविद्यालय और उसकी कोई सी. एल. ई. छात्रों को अंग्रेजी भाषा से अन्यथा भाषा में पूर्णरूप से या आंशिक रूप से शिक्षण किए जाने या लघु परीक्षा या अंतिम सेमेस्टर के दौरान प्रश्न-पत्रों के उत्तर अंग्रेजी भाषा से अन्यथा भाषा में देने के लिए अनुज्ञात करता है तब छात्रों को अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ना होगा ।"

48. नियम 8 के अधीन भाषा के निर्धारण को विधिज्ञ परिषद् द्वारा प्राधिकृत किया गया है जिसका उल्लेख नियम की अनुसूची-II के अन्तर्गत किया गया है ।

49. भारत में न्यायालयों की भाषा में कई सदियों से परिवर्तन चला आ रहा है अर्थात् उर्दू, फारसी और अरबी भाषा का प्रयोग मुगल युग में किया जाता था जो ब्रिटिश शासन के दौरान भी बना रहा । तथापि, संघवासी युग में प्रादेशिक भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा पुरःस्थापित की गई जिसके लिए एक दुष्कर प्रक्रिया से गुजरना पड़ा और रोजमर्रा के कार्यों के लिए अनुवाद भी करवाना पड़ा और इसी कारण सम्पूर्ण भारत के सभी न्यायालयों में अनुवादकों की व्यवस्था कराई गई । शिक्षण का

माध्यम धीरे-धीरे बदलता गया और ब्रिटिश शासन के नियंत्रणाधीन उच्चतर शिक्षा से संबंधित संस्थानों में विधि विषय अंग्रेजी भाषा में ही पढ़ाया जाने लगा । अंग्रेजी भाषा में शिक्षण का कार्य कई सदियों तक बना रहा ।

50. भारत के संविधान की स्वतंत्रता और प्रख्यापन के आधार पर राजभाषा के प्रयोग के संबंध में विशिष्ट उपबंध ऊपर निर्दिष्ट रूप में संविधान में पुरःस्थापित और निगमित किए गए हैं । उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा से संबंधित राजभाषा अधिनियम, 1963 के अधीन विशिष्ट उपबंध संविधान के अनुसरण में अधिसूचना विशेषकर हिन्दी भाषी राज्यों द्वारा जारी की गई है । न्यायालयों में भाषा का प्रयोग विहित किया जाना सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 137 के अधीन निम्न रूप में उपबंधित है :-

> "137. **अधीनस्थ न्यायालयों की भाषा** – (1) वह भाषा जो इस संहिता के प्रारंभ पर उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय की भाषा है, उस अधीनस्थ न्यायालय की भाषा तब तक बनी रहेगी जब तक राज्य सरकार अन्यथा निर्देश न दे ।
>
> (2) राज्य सरकार यह घोषणा कर सकेगी कि किसी भी ऐसे न्यायालय की भाषा क्या होगी और किस लिपि में ऐसे न्यायालयों को आवेदन और उनमें की कार्यवाहियां लिखी जाएंगी ।
>
> (3) जहां यह संहिता साक्ष्य के अभिलेखन से भिन्न किसी बात का किसी ऐसे न्यायालय में लिखित रूप में किया जाना अपेक्षित या अनुज्ञात करती है वहां ऐसा लेखन अंग्रेजी में किया जा सकेगा, किन्तु यदि कोई पक्षकार या उसका प्लीडर अंग्रेजी नहीं जानता है तो न्यायालय की भाषा में अनुवाद उसकी प्रार्थना पर उसे दिया जाएगा और न्यायालय ऐसे अनुवाद के खर्चों के संदाय के संबंध में ऐसा आदेश करेगा जो वह ठीक समझे ।"

51. उच्च न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 138 के अधीन अंग्रेजी में साक्ष्य अभिलिखित करने की शक्ति प्रदत्त की गई है ।

52. इसी प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन भाषा का प्रयोग इस संहिता की धारा 272 के अधीन निम्न प्रकार उपबंधित है :-

"272. **न्यायालयों की भाषा** - राज्य सरकार यह अवधारित कर सकती है कि इस संहिता के प्रयोजनों के लिए राज्य के अन्दर उच्च न्यायालय से भिन्न प्रत्येक न्यायालय की कौन सी भाषा होगी ।"

53. दांडिक मामलों में अभिलेख और निर्णय की भाषा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 265 के अनुसार शासित की जाएगी जो कि निम्न प्रकार है :-

"265. **अभिलेख और निर्णय की भाषा** - (1) ऐसा प्रत्येक अभिलेख और निर्णय न्यायालय की भाषा में लिखा जाएगा ।

(2) उच्च न्यायालय संक्षिप्ततः विचारण करने के लिए सशक्त किए गए किसी मजिस्ट्रेट को प्राधिकृत कर सकता है कि वह पूर्वोक्त अभिलेख या निर्णय या दोनों उस अधिकारी से तैयार कराए जो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा निमित्त नियुक्त किया गया है और इस प्रकार तैयार किया गया अभिलेख या निर्णय ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा ।"

54. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 277 के अधीन साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के लिए उपबंध किया गया है जो निम्न प्रकार है :-

"277. **साक्ष्य के अभिलेख की भाषा** - प्रत्येक मामले में जहां साक्ष्य धारा 275 या धारा 276 के अधीन लिखा जाता है वहां -

(क) यदि साक्षी न्यायालय की भाषा में साक्ष्य देता है तो उसे उसी भाषा में लिखा जाएगा ;

(ख) यदि वह किसी अन्य भाषा में साक्ष्य देता है तो उसे, यदि साक्ष्य हो तो, उसी भाषा में लिखा जा सकेगा और यदि ऐसा करना साध्य न हो तो जैसे-जैसे साक्षी की परीक्षा होती जाती है, वैसे-वैसे साक्ष्य का न्यायालय की भाषा में सही अनुवाद तैयार किया जाएगा, उस पर मजिस्ट्रेट या पीठासीन न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और वह अभिलेख का भाग होगा ;

(ग) उस दशा में जिसमें साक्ष्य खण्ड (ख) के अधीन न्यायालय की भाषा से भिन्न किसी भाषा में लिखा जाए, न्यायालय की भाषा में उसका सही अनुवाद यथा-साध्य शीघ्र तैयार किया जाएगा, उस पर मजिस्ट्रेट या पीठासीन न्यायाधीश हस्ताक्षर करेगा और वह अभिलेख का भाग होगा :

परन्तु जब खण्ड (ख) के अधीन साक्ष्य अंग्रेजी में लिखा जाता है और न्यायालय की भाषा में उसके अनुवाद की किसी पक्षकार द्वारा अपेक्षा नहीं की जाती है तो न्यायालय ऐसे अनुवाद से अभिमुक्ति दे सकता है ।"

55. यह भी उल्लेखनीय है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 211(6) के अधीन आरोप विरचित किए जाने के समय न्यायालय की भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए । आरोप में प्रयोग किए गए शब्दों का भाव और अर्थ ऐसा होना चाहिए जैसा उस अपराध से संबंधित विधि में किया गया है जिसका उल्लेख दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 214 में भी किया गया है । न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 के अधीन अभियुक्त को आरोप की भाषा पढ़कर सुनाए और स्पष्ट करे ताकि वह (अभियुक्त) उसका उत्तर दे सके ।

56. अधीनस्थ न्यायालयों में सिविल और दांडिक विधि से संबंधित आम प्रक्रिया होने के कारण हम पुनः संविधान के संबंध में किए गए सांविधानिक संशोधनों पर विचार करेंगे । भारत के संविधान के अध्याय XXII के अधीन वर्ष 1987 में अनुच्छेद 394क में किया गया 58वां संशोधन निम्न प्रकार है :-

"394क. **हिन्दी भाषा में प्राधिकृत पाठ** – (1) राष्ट्रपति –

इस संविधान के हिन्दी भाषा में अनुवाद को, जिस पर संविधान सभा के सदस्यों ने हस्ताक्षर किए थे, ऐसे उपान्तरणों के साथ जो उसे केन्द्रीय अधिनियमों के हिन्दी भाषा में प्राधिकृत पाठों में अपनाई गई भाषा, शैली और शब्दावली के अनुरूप बनाने के लिए आवश्यक हैं, और ऐसे प्रकाशन के पूर्व किए गए इस संविधान के ऐसे सभी संशोधनों को उसमें सम्मिलित करते हुए, तथा

(ख) अंग्रेजी भाषा में किए गए इस संविधान के प्रत्येक संशोधन के हिन्दी भाषा में अनुवाद को, अपने प्राधिकार से प्रकाशित कराएगा ।

(2) खण्ड (ख) के अधीन प्रकाशित इस संविधान और इसके प्रत्येक संशोधन के अनुवाद का वही अर्थ लगाया जाएगा जो उसके मूल का है और यदि ऐसे अनुवाद के किसी भाग का इस प्रकार अर्थ लगाने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो राष्ट्रपति उसका उपयुक्त पुनरीक्षण कराएगा ।

(3) इस संविधान का और इसके प्रत्येक संशोधन का इस अनुच्छेद के अधीन प्रकाशित अनुवाद, सभी प्रयोजनों के लिए उसका हिन्दी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।"

57. हिन्दी भाषा में संविधान का प्राधिकृत पाठ हिन्दी भाषा का प्रयोग राजभाषा के रूप में सम्पूर्ण भारत में प्रयोग किए जाने के लिए सांविधानिक सूचक के अनुसार तैयार किया गया था जिसके लिए हिन्दी भाषा पर कार्य करने का प्रयास किया गया । यही कारण है कि संसद् द्वारा उपरोक्त सांविधानिक संशोधन किया गया जिसमें भारत के राष्ट्रपति को संविधान का प्राधिकृत पाठ हिन्दी में पुनरीक्षित करने के लिए सशक्त किया गया और संविधान के अनुच्छेद 394क के उप-अनुच्छेद (3) के अधीन यह आज्ञापक है कि इस संविधान का और इसके प्रत्येक संशोधन का इस अनुच्छेद के अधीन प्रकाशित अनुवाद सभी प्रयोजनों के लिए उसका हिन्दी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा । इससे न्यायालयों को मात्र अनुवाद के आधार पर नहीं अपितु प्राधिकृत पाठ के आधार पर निर्वचन करने और निर्णय देने में सहायता मिलेगी । अतः इस दस्तावेज के प्राधिकृत पाठ पर बल दिया गया है जिसका निर्वचन न्यायालयों को करना होता है ।

58. इस पृष्ठभूमि में रिट न्यायालय में लिखित भाषा में किए गए अभिवाक् प्रामाणिक भाषा में ही समझे जाने चाहिए जिसका यह कारण है कि संविधान के अनुच्छेद 215 के अधीन उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है । उच्च न्यायालय एक ऐसा उच्चतर न्यायालय है जिसे अन्तर्निहित और सर्वांगीण शक्ति असीम अधिकारिता के साथ

प्राप्त है और साथ ही उसे अपनी शक्तियां सुनिश्चित करने की अधिकारिता भी है । उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों की इस व्यापकता का अवलंब किसी व्यक्ति द्वारा रिट अधिकारिता के अधीन संविधान के अधीन उपबंधित उसके अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किया जा सकता है । अतः यह अनुच्छेद सभी व्यक्तियों को लागू होता है जिनमें वे व्यक्ति सम्मिलित नहीं हैं जिन्हें अभी हिन्दी भाषा में प्रवीणता अर्जित करनी है । इस प्रकार, उच्च न्यायालयों में जो कि अभिलेख न्यायालय हैं, राजभाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा को बनाए रखना पूरे देश में आज भी प्रचलित है । अतः अंग्रेजी भाषा में अभिलेख बनाए रखना ऊपर निर्दिष्ट उच्च न्यायालय नियम में निगमित किया गया था ।

59. तथापि, प्रश्न यह है कि रिट अधिकारिता वाले मामले में अभिवाक् का सरलीकरण हिन्दी भाषा में किया जाए या नहीं । हिन्दी भाषा का प्रयोग किए जाने की अनुज्ञा देना, जो कि न्यायालय की भाषा की दृष्टि से निषेध है, संविधान के अनुरूप नहीं माना जा सकता, किन्तु इसके विकल्प का प्रयोग किए जाने की अनुज्ञा दी जा सकती है और कम से कम रिट याचिकाओं में किए गए अभिवाक् और कर से संबंधित मामले अंग्रेजी भाषा में ही फाइल किए जा सकते हैं ।

60. एक महत्वपूर्ण कारक जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए, शिक्षण का माध्यम है जिसका प्रयोग विधि पाठ्यक्रम चलाने वाली संस्थाओं में किया जाता है, भारतीय विधिज्ञ परिषद् और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार भाषा का स्तर नियत किया गया है । हमने पहले ही ऊपर भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा निहित नियम उद्धृत किए हैं जो प्रत्येक मान्यताप्राप्त संस्था को लागू होते हैं कि वे शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी भाषा रखे । इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि ऐसे शिक्षण संस्थानों में हो रही वृद्धि के साथ जो कई स्तर पर विधि पाठ्यक्रम चला रहे हैं, अंग्रेजी भाषा शिक्षण का माध्यम बनी हुई है । अतः अंग्रेजी भाषा जैसा कि विधिज्ञ परिषद् द्वारा विहित है कि यह शिक्षण के माध्यम की एकमात्र भाषा है । इस मुद्दे की व्यवहारिकता पर भाषा की अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना

चाहिए कि हिन्दी भाषा को समुचित अधिसूचना द्वारा आनुक्रमिक परिवर्तन करते हुए पाठयक्रम के शिक्षण की भाषा बनाया जाए । यही कारण है कि इस संबंध में की गई पूर्ववर्ती सुनवाई पर विचार करने पर हमने विद्वान् महाधिवक्ता से निवेदन किया है कि इस मामले में सरकार से उच्च स्तर पर चर्चा करें क्योंकि इस संबंध में जो अधिसूचना जारी की गई है वह राज्य सरकार द्वारा जारी की गई है ।

61. तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का निर्वचन करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष यह कार्य है कि वह विधिकतः और विधिमान्यता के साथ इस अधिसूचना का सटीक आशय और प्रयोजन स्पष्ट करे । यह अधिसूचना संविधान के अनुच्छेद 348 के उप-अनुच्छेद (2) की शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई है । अतः राज्य सरकार को ऐसी अधिसूचना जारी करने की पूरी शक्ति प्राप्त है जो वर्ष 1972 में पहले ही जारी कर दी गई थी । अतः राज्य सरकार ऐसी अधिसूचना के जारी रहने की व्यवहार्यता का निर्धारण कर सकती थी किन्तु इस पर भी यह ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए कि क्या सभी विधायी दस्तावेज, पूर्व निर्णय और विधिक शब्दावली का प्रयोग हिन्दी भाषा में सभी सरकारी कार्यों में सुविधा की दृष्टि से किया जाता है या नहीं । अतः हिन्दी भाषा में अभिवाक् करने के कार्य का निर्धारण उपरोक्त पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि न्यायाधीशों को न्यायालय की भाषा में काम करना होता है ।

62. निःसंदेह, यह सत्य है कि कोई भी मुकदमेबाज अपनी ही भाषा में निर्णय को समझना चाहेगा और इसके लिए अनुवाद की व्यवस्था है । यह व्यवस्था उच्च न्यायालय नियम के अधीन उच्चतम न्यायालय को भेजे जाने वाले दस्तावेजों को भी लागू होती है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है । न्यायालय की कार्यवाहियों का अनुवाद करने के लिए जो विधि अपनाई जाती है वह अत्यंत कठिन कार्य है और वह भी तब जब उसके लिए प्रवीण अनुवादक उपलब्ध हो । अतः इस पृष्ठभूमि का निर्धारण अधिसूचना का अन्यथा निर्वचन करने के पूर्व किया जाना चाहिए । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है राज्य सरकार ने इस प्रकार अनुवाद कराने की कोई व्यवस्था नहीं सुझाई है । यह समझ लेना

चाहिए कि आजकल उच्च न्यायालयों के समक्ष अधिकतर रिट अधिकारिता वाले मामले फाइल होते हैं और अधिकारों तथा मूल अधिकारों के प्रवर्तन का जटिल प्रश्न कई बार उठाया जाता है जिसमें न्यायालयों को अधिकारों का निर्वचन करना होता है और उनके भाव को समझना होता है । अतः हम तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना की विधिमान्यता और विधिकता की परख उपरोक्त प्रतिपादनाओं के आधार पर करेंगे ।

63. भारत के संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना पर आधारित इस विषयवस्तु से संबंधित विधि के अधीन **प्रबंधक समिति और अन्य** बनाम **जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय में व्याख्या की गई है । राज्य सरकार ने तारीख 19 फरवरी, 1968 के राजपत्र में जारी अधिसूचना द्वारा निदेश दिया कि देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा का प्रयोग शासकीय कार्यों से संबंधित किया जाए । इसके पश्चात् राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 28 अक्तूबर, 1970 को अधिसूचना जारी की गई जिसके अधीन अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के प्रयोग को उच्च न्यायालय द्वारा पारित किसी भी निर्णय, डिक्री और आदेश में किए जाने के लिए प्राधिकृत किया गया । तथापि, इसके पश्चात् एक केवियट भी फाइल की गई कि यदि कोई भी निर्णय हिन्दी भाषा में पारित किया जाता है तब उसके साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार के अधीन अंग्रेजी भाषा में किया गया अनुवाद भी लगाया जाएगा । उपरोक्त निर्णय में उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों तथा याचिकाएं फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ हिन्दी का प्रयोग किए जाने के संबंध में मुद्दा उठाया गया । इस संबंध में संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन तारीख 5 सितंबर, 1969 को एक अधिसूचना जारी की गई जिसका पैरा 4 निम्न प्रकार है :–

"4. इलाहाबाद उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में हिन्दी भाषा

---

[1] ए. आई. आर. 1977 इलाहाबाद 164.

के आनुक्रमिक प्रयोग पर पुनः विचार किया गया । संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने राष्ट्रपति से पूर्व-सम्मति लेकर यह आदेश किया है कि हिन्दी भाषा का प्रयोग निम्न शर्तों के अध्यधीन उच्च न्यायालय के समक्ष शपथ-पत्र फाइल किए जाने, कथन प्रस्तुत किए जाने तथा पेपर-बुक सहित दस्तावेज फाइल किए जाने में किया जा सकता है –

1. यदि न्यायपीठ द्वारा ऐसी ईप्सा की जाए, न्यायपीठ शपथ-पत्र, कथन और दस्तावेज अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किए जाने का आदेश कर सकती है, और

2. यदि किसी निर्णय में हिन्दी भाषा में कोई अभिवाक्, कथन या दस्तावेज निगमित किया जाता है, तब उसका अंग्रेजी अनुवाद तत्काल पश्चात् कराया जाए ।"

64. अतः इस निर्णय में यह अभिलिखित है कि उक्त खण्ड के अधीन न्यायालय की कार्यवाहियों में देवनागरी लिपी में हिन्दी का प्रयोग स्पष्ट रूप से अनुज्ञात किया गया है और इसके पश्चात् न्यायालय ने यह अवेक्षा की है कि क्या इस अधिसूचना के अन्तर्गत यह रिट याचिका और अन्य अभिवाक् हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किए जा सकते हैं । उक्त अधिसूचना का यह अर्थ लगाया गया है कि इसका स्पष्ट आशय उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में हिन्दी भाषा के प्रयोग को संभव बनाना है जो संविधान की मर्यादा के अनुरूप होगा । न्यायालय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियम पर विचार किया और इसके पश्चात् अन्तिम रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि हिन्दी की देवनागरी लिपि में तैयार की गई रिट याचिका अनुज्ञात की गई और उत्तर प्रदेश राज्य में उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए फाइल की जा सकती है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अधिसूचना की भाषा को दृष्टिगत करते हुए हिन्दी भाषा के योगदान संबंधी उपरोक्त कार्य किए गए । तथापि, उक्त निर्णय में यह उल्लेखनीय है कि न्यायालय की भाषा, जैसा कि उपरोक्त निर्णय के पैरा 1 से 8 में व्यक्त किया गया है, के प्रयोग में ऐतिहासिक परिवर्तन आया है जो निम्न प्रकार है :-

"1. इस मामले में प्रारंभिक मुद्दा यह है कि क्या हिन्दी की देवनागरी लिपि में तैयार करके इस न्यायालय में प्रस्तुत की गई रिट याचिका ग्रहण की जा सकती है और उस पर न्यायनिर्णयन किया जा सकता है या नहीं । वर्तमान रिट याचिका हिन्दी भाषा में तैयार की गई थी, साथ ही इस याचिका से संबद्ध शपथ-पत्र और प्रत्युत्तर शपथ-पत्र भी हिन्दी भाषा में ही तैयार किए गए थे और याची ने इसकी सुनवाई इसी प्रकार किए जाने का आग्रह किया । चूंकि इसमें जनहित से संबंधित विधि का प्रश्न उठाया गया है, इसलिए, हम इसे विनिश्चित किए जाने का प्रस्ताव रखते हैं और हमें यह कहना ही होगा कि याची की ओर से हाजिर होने वाले श्री एस. एन. काकेर द्वारा इस संबंध में हमारी महत्वपूर्ण सहायता की गई है और इन्होंने, हमारी राय में, हिन्दी के पक्ष में महत्वपूर्ण तर्क दिए हैं ।

2. न्यायालय की भाषा से किसी अन्य भाषा में परिवर्तन चाहे वह राजनैतिक स्वतंत्रता या राष्ट्रवादी भावना का प्रस्फुटन या दोनों से प्रभावित हो, प्रायः संशय, शंका और खुले या छिपे विरोध से आच्छादित होती ही है । परंपरावादी लोग संस्थापित राज्यक्षेत्र में ऐसे हस्तक्षेप से व्यथित हो जाते हैं । इसके प्रतिकूल, सुधार करने वाले लोग विदेशी भाषा की तानाशाही को सहन नहीं कर पाते हैं । वे भाषा के नए युग में नई भाषा का उदय कराने के लिए अत्यंत उत्सुक रहते हैं । संसार का इतिहास गवाह है कि न्यायालय की भाषा एक समय के बाद अन्य भाषा से प्रतिस्थापित होती रही है । इंग्लैंड में अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व को बनाए रखने का संघर्ष लगभग पांच शताब्दी तक चलता रहा । इंग्लैंड के सेक्जन आक्रमणकारियों ने रोमन का कब्जा लगभग नष्ट कर दिया था, यद्यपि उनकी भाषा शुरू-शुरू में प्रभावी हो गई किन्तु बाद में उस पर लेटिन भाषा का प्रभाष अधिक बना रहा । जब फ्रांसीसी राष्ट्र वास्तव में वजूद में आया तब रोमन सभ्यता की एक समान्तर भाषा धीरे-धीरे बनी जो फ्रांसीसी भाषा थी किन्तु फ्रांसीसी भाषा लेटिन भाषा से ही निकली थी । लगभग प्रत्येक शब्द सीधे ही लेटिन भाषा से फ्रांसीसी

भाषा में लिया गया । अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि इंग्लैंड में न्यायालय लेटिन और फ्रांसीसी भाषा से कई शताब्दियों तक प्रभावित रहे । इंग्लैंड की सामान्य विधि जिसका प्रयोग रॉयल न्यायालय द्वारा किया जाता था, मुख्यतः फ्रांसीसी भाषा में तैयार की गई थी । फ्रांसीसी भाषा नार्मन और अंगेव के राज्यों और न्यायालयों की भाषा थी और फ्रांसीसी भाषा आम न्यायालयों की भाषा उच्चवर्गीय समाज की भाषा न रहने के पश्चात् बनी रही । सामान्य न्यायालयों के लिखित अभिलेख लेटिन भाषा में तैयार किए गए किन्तु मौखिक अभिवाक् फ्रांसीसी भाषा में ही किए जाते थे । चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक अंग्रेजी भाषा शासकीय वर्गों की भाषा के रूप में फ्रांसीसी भाषा पर छा गई किन्तु फ्रांसीसी भाषा सत्तरहवीं शताब्दी तक विधि साहित्य की भाषा बनी रही । (विद्वान् लेखक रैडक्लिफ एण्ड क्रास द्वारा लिखित पुस्तक "द इंग्लिश लीगल सिस्टम" तृतीय संस्करण, पृष्ठ 15 देखिए)

3. लैटिन भाषा, बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी की विधिक भाषा थी । अतः महा न्यायालयों जैसे बड़े न्यायालयों की शासकीय भाषा में ही अभिवाक् सूची अभिलिखित की जाती थी । तेरहवीं शताब्दी में विद्वानों ने सोचने और बोलने का कार्य लैटिन भाषा में ही किया है ; उच्चवर्गीय समाज के सामान्य व्यक्ति फ्रांसीसी भाषा में सोचने और बोलने का कार्य करते थे जब कि निम्नवर्गीय समाज के लोग अंग्रेजी भाषा का प्रयोग विभिन्न बोलियों में करते थे किन्तु सामान्य विधि सम्राट न्यायालय द्वारा ही तैयार की जाती थी । उच्चवर्गीय लोगों की भाषा का प्रयोग विधि में किया जाता था और जब इस विधि का प्रयोग सभी वर्गों के लिए किया जाने लगा तब भी विधि में उच्चवर्गीय लोगों की भाषा का ही प्रयोग किया जाता था । अतः न्यायालयों के अभिलेख लैटिन भाषा में तैयार किए जाते थे, किन्तु मुकदमों में अभिवाक् और उनका न्यायनिर्णयन फ्रांसीसी भाषा में किया जाता था । स्वाभाविकतः, विधि पुस्तकें और विधि पत्रिकाएं जिनका प्रयोग अधिवक्ताओं द्वारा किया जाता था, उसी भाषा में तैयार की जाती थीं । ब्रैक्टन की लैटिन भाषा ने ब्रिटन की

फ्रांसीसी भाषा को स्थान दिया जिसका उल्लेख डब्ल्यू. एस. होल्ड्सवर्थ द्वारा लिखित पुस्तक "ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश ला" जिल्द II, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 479 में किया गया है । चौदहवीं शताब्दी में सामान्य प्रयोजनों के लिए फ्रांसीसी भाषा को अतिष्ठित करते हुए अधिनियम पारित किया गया किन्तु विधि प्रयोजनों के लिए फ्रांसीसी भाषा का ही प्रयोग किया गया । वर्ष 1362 में ही एक प्रसिद्ध कानून अधिनियमित किया गया कि अभिवाक् अंग्रेजी भाषा में किए जाने चाहिए न कि फ्रांसीसी भाषा में, यद्यपि न्यायालयों के अभिलेख लैटिन भाषा में ही तैयार किए जा रहे थे । किन्तु ऐसी ही प्रधानता फ्रांसीसी भाषा को भी दी गई थी कि वर्ष 1362 का कानून उस प्रयोजन के लिए सफल नहीं रह सका जिसके लिए वह बनाया गया था । इसके दो कारण थे । पहला कारण यह था कि विधि का न्यायनिर्णयन करने का भार व्यवसायिक अधिवक्ताओं पर आ गया था जो, विद्वान् लेखक फोरटैसक्यू के अनुसार, उस भाषा में न अभिवा्क कर सके, न न्यायनिर्णयन और न कोई भी पत्रिका को पढ़कर समझ सके सिवाय फ्रांसीसी भाषा के । दूसरा कारण यह था कि प्राविधिक शब्द लगभग फ्रांसीसी भाषा में ही प्रयोग किए जाते थे । विद्वान् कोक ने कहा है, "विधिक फ्रांसीसी भाषा से शब्दावली का सजृन हुआ है जो इतनी अनुकूल और महत्वपूर्ण है कि विधि का सटीक रूप सुगमतापूर्वक स्पष्ट किया जा सकता है और इस भाषा के बिना विधि का अर्थ स्पष्ट नहीं किया जा सकता, अतः किसी भी प्रकार भाषा परिवर्तन संभव नहीं है और न ही विधि शब्दावली को बदला जा सकता है" । विद्वान् लेखक रोजर नार्थ, जिनकी मृत्यु 1734 में हुई, ने फोरटैसक्यू और कोक का समर्थन करते हुए कहा है कि "इंग्लिश विधि के नियम अंग्रेजी भाषा में समुचित रूप से व्यक्त नहीं किए जा सकते हैं और यह कि कोई व्यक्ति कलहकारी तो हो सकता है किन्तु वह अधिवक्ता नहीं बन सकता जब तक कि वह सही भाषा में लिखी हुई विधि की प्रमाणिक पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त न कर ले" । जहां अपने देश में ऐसी समस्या पर विचार करते हैं तब यह

स्पष्ट हो जाता है कि भारत में भी लगभग ऐसी ही स्थिति है और ऊपर कोट किए गए इंग्लिश अधिवक्ताओं और विधिवेत्ताओं की टिप्पणियों का प्रयोग अक्षरशः किया जा सकता है ताकि उन भर्तियों की प्रतिक्रियाओं को व्यक्त किया जा सके जो अंग्रेजी भाषा का प्रयोग स्वाभाविक रूप से करते हैं और उन पर यह भाषा इस सीमा तक आच्छादित है कि वे न्यायालय संबंधी कार्यों को हिन्दी भाषा में करने पर अत्यधिक असुविधा का सामना करेंगे ।

4. परिणामस्वरूप, इंग्लैंड के न्यायालयों में आम जनता की भाषा उच्चवर्गीय लोगों की भाषा पर प्रभावी हो गई । ब्रिटेन के लोगों की भाषा अंग्रेजी भाषा बन चुकी थी और इससे कोई भी बच नहीं सकता था । विद्वान् लेखक मेटलैंड ने कहा है कि विधि जीवन और तर्क का आधार है । अतः अन्ततोगत्वा फ्रांसीसी भाषा को अंग्रेजी भाषा के लिए स्थान देना पड़ा बावजूद इसके कि संक्षिप्ततः और प्राविधिक शब्दावली को ध्यान में रखते हुए फ्रांसीसी भाषा को प्रधानता दी जाती थी । परिणामस्वरूप, 1731 के अधिनियम के अनुसार, जो वालपोल की पूर्ण प्रभुत्व के अधीन पारित किया गया था, इंग्लैंड के न्यायालयों में लैटिन भाषा का प्रयोग समाप्त कर दिया गया ।

5. भारत में हमें ऐसा ही तरीका दिखाई दे रहा है । परम्परावादी लोगों का कहना है कि अंग्रेजी भाषा भारतीयों की मूल आवश्यकता बन गई है और यह असंख्य भारतीयों की संस्कृति का अंग भी है । एक सांसद ने हाल ही में यह कहा है कि भारत के संविधान, अनेक निचले न्यायालयों, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेजी है, जो कि विधान-मंडल की एकमात्र प्राधिकृत भाषा है जिसका प्रयोग प्रशासनिक, न्यायिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में एकमात्र रूप से किया जाता है । दूसरी ओर, दैवीय भाषा संस्कृत और इससे सृजित सुन्दर भाषा अर्थात् हिन्दी के समर्थक यह कहते हैं कि हिन्दी भाषा एक ऐसी भाषा है जिसने उनके अवतारों, कवियों और लेखकों ने धरती और स्वर्ग के रहस्यों को स्पष्ट किया है और व्यर्थ आक्षेपों से बचना तथा पारलौकिक

एकता बनाए रखना सिखाया है जो कि आध्यात्मिक जीवन है । उनके लिए हिन्दी भाषा ऐसी भाषा है जिसमें मीरा बाई ने अपने मोहक गीत गाए हैं, तुलसी और सूरदास ने अपने गुरुओं की वन्दना की है और जयशंकर प्रसाद ने अमर कहानियों की रचना की है । तथापि, इस मुद्दे को तर्कणा, मूल कारकों के आधार पर और कल्पित तत्वों, निजी असुविधा के बिना विनिश्चित किया जाना चाहिए । एक ऐसी पीढ़ी के लिए, जो पूरी तरह अंग्रेजी भाषा से प्रभावित है, हिन्दी भाषा को अपनाना मानसिक समायोजन की दृष्टि से अत्यंत कठिन होगा । किन्तु हिन्दी भाषा की ओर से दिए गए तर्कों का खंडन करने के लिए यह कोई सही आधार नहीं है । महात्मा गांधी ने कहा : "हमारे गुरुओं ने हमारे लिए गलत मार्ग चुना है और उन्होंने गलत को ही सही दर्शाया है" ।

6. इसमें संदेह नहीं है कि किसी जगह के निवासियों के लाभ के लिए प्रयोग की जाने वाली न्यायालय की कार्यवाही उनकी उस भाषा में होनी चाहिए जिसे वे समझ सके । यह बात पर्याप्त रूप से नहीं समझी गई है कि किसी देशीय भाषा का अपनाया जाना न्यायालयों की लोकतांत्रिक छवि को बनाए रखता है । न्यायालय केवल लोगों की अपनी भाषा के माध्यम से ही उनके साथ संबंध बना पाता है ; न्यायालयों का यह एक आवश्यक लोकतांत्रिक गुण है और समाजवादी न्याय का बुनियादी संघटक है । लेनिन जैसे साम्यवादी विचारकों ने भी न्यायालयों की लोकतांत्रिक कार्यशैली को अत्यधिक महत्व दिया है । विद्वान् लेनिन ने कहा –

> "न्यायालयों को सोवियत पद्धति के सिद्धांतों के अनुसरण में लोकतांत्रिक रीति में यह सुनिश्चित करना होगा कि अनुशासन और संयम बेकार नहीं जाते हैं ..." (लेनिन द्वारा लिखित पुस्तक "क्लेटेड वर्क्स", जिल्द 27, पृष्ठ 218 देखिए)
>
> महात्मा गांधी ने विदेशी भाषा के दासवत् अंगीकरण का खुले तौर पर खण्डन किया है –
>
> > "उन्होंने कहा – मुझे अंग्रेजी भाषा या उसके साहित्य की निन्दा नहीं करनी चाहिए । समाचारपत्र

हरिजन में मेरे द्वारा लिखे गए कॉलम अंग्रेजी भाषा से प्रेम होने का एक पर्याप्त प्रमाण हैं । किन्तु अंग्रेजी साहित्य की महिमा भारतीय राष्ट्र के लिए उतनी उपयोगी नहीं है जितनी शीतोष्ण जलवायु वाले देश इंग्लैंड के लिए उपयोगी है । भारत को अपने ही वातावरण, दृश्यों और साहित्यों में जगमगाना है भले ही ये तीनों गुण विदेश की तुलना में कम क्यों न हों । हमें और हमारे बच्चों को अपनी विरासत स्वयं बनानी होगी । यदि हम किसी अन्य की विरासत अपनाएंगे तब हम अपनी खो बैठेगें । हम कभी भी विदेशी खाद्य सामग्री पर निर्वाह नहीं कर सकते ।" (कृष्ण कृपलानी द्वारा संपादित पुस्तक "लाइफ एण्ड थॉट्स ऑफ महात्मा गांधी", पृष्ठ 154 देखिए)

7. निःसंदेह, भारत में सार्वजनिक रूप से समझी जाने वाली भाषा हिन्दी है । अकेले उत्तर प्रदेश में इस भाषा को बोलने वाले लगभग 8 करोड़ व्यक्ति हैं, इनके अतिरिक्त बिहार, राजस्थान, हरियाणा और मध्य प्रदेश के एक बड़े भाग में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाता है । विधि की दृष्टि से कई सर्वेक्षण इस संबंध में किए गए हैं जिनसे यह दर्शित होता है कि उत्तर प्रदेश में उच्च न्यायालय और अन्य न्यायालयों की भाषा के रूप में हिन्दी भाषा को अपनाए जाने में कोई भी विधिक रुकावट सामने नहीं आई है । इस मामले पर संविधान के अनेक उपबंधों के संबंध में विचार किया जा सकता है जिनका उल्लेख तीन खण्डों में इस प्रकार किया जा रहा है –

(क) भारत संघ की राजभाषा क्या है ?

(ख) राज्य की राजभाषा क्या है ? और

(ग) उच्च न्यायालयों में प्रयोग की जाने वाली भाषा कौन सी है ?

संविधान के अनुच्छेद 343 के अधीन यह उपबंधित है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी । ऐसा प्रतीत होता है

कि संविधान के निर्माताओं ने हिन्दी भाषा का सीधे ही प्रयोग किए जाने पर विचार किया और इसीलिए उन्होंने अनुच्छेद 343 में निम्न सुरक्षोपायों का उपबंध किया है –

> "(2) खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था :
>
> परन्तु, राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा का और भारतीय अंकों के अन्तरराष्ट्रीय रूप से अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा"।

8. साथ ही, संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट किया कि संघ की राजभाषा के संबंध में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समय नष्ट नहीं किया जाना चाहिए और राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं के विकास में विलंब नहीं होना चाहिए । अतः, संविधान में पृथक् उपबंध राज्यों की राजभाषा या राजभाषाओं के संबंध में निगमित किए गए । तद्नुसार, संविधान के अनुच्छेद 345 में निम्न उपबंध किया गया है –

> "345. राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं – अनुच्छेद 346 और 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिन्दी को उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगा :
>
> परन्तु जब तक राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय

प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था" ।

65. शैक्षणिक संस्थानों से संबंधित मामलों और शिक्षण के माध्यम तथा प्रभावी विषय के रूप में संस्कृत भाषा का लोप किए जाने से संबंधित उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया । सी. बी. एस. ई. को चाहिए कि वह संस्कृत भाषा को एक प्रभावी रूप में सम्मिलित करे जैसा कि **संतोष कुमार और अन्य** बनाम **सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय और एक अन्य**[1] वाले मामले में रिपोर्ट किया गया है । अंग्रेजी भाषा में प्रश्नों के उत्तर देने से संबंधित निदेश दिए जाने के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष **बलराज मिश्रा और एक अन्य** बनाम **माननीय मुख्य न्यायाधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय और अन्य**[2] वाले मामले में चुनौती दी गई है । न्यायालय ने अत्यधिक संतुलित मत व्यक्त किया किन्तु साथ ही हिन्दी भाषा की प्रोन्नति के लिए सांविधानिक दृष्टिकोण पर भी बल दिया और एक भाषा से दूसरी भाषा में परिवर्तन किए जाने पर विचार करते हुए निम्न मत व्यक्त किया :-

"4. हिन्दी भाषा को हमारे संविधान में न केवल गर्वान्वित किया गया है अपितु यह भारत के अन्य राज्यों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश राज्य की राजभाषा है । हिन्दी और अंग्रेजी भाषा के बीच किसी प्रकार की शत्रुता होने का कोई प्रश्न नहीं उठता है । इन राज्यों में हिन्दी भाषा ने प्रधान रूप ग्रहण कर लिया है । इस वर्ष सितंबर के मध्य में हिन्दी भाषा ने भारत की राजभाषा की हैसियत से अर्ध-शताब्दी पूरी की है । वास्तव में, विडम्बना यह है कि इस भाषा के राजभाषा के रूप में विफल होने की स्वर्ण जयंती पूरी हो चुकी है । हिन्दी भाषी क्षेत्रों (काउ बेल्ट) में भाषा की ऐसी विफलता अत्यधिक विचारणीय है और यह उपहासजनक है कि हिन्दी भाषा को इन क्षेत्रों में सामान्य भाषा कहा गया है ।

---

[1] (1994) 6 एस. सी. सी. 579.

[2] (2000) 1 ए. डब्ल्यू. सी. 296.

5. संविधान और राजभाषा अधिनियम दोनों ने हिन्दी भाषा को राजभाषा की हैसियत दी है तथापि, वास्तव में, ऐसा बहुत से कारणों से नहीं हुआ है जिनमें राजनीतिक इच्छा, हिन्दी के पक्ष में आम सहमति का न होना तथा लोकतांत्रिक स्वरूप और कानून का पालन करने के प्रति शासन द्वारा घोर अनिच्छा दर्शाना जैसे कारण सम्मिलित हैं । उच्च वर्ग के लोगों का यह विश्वास है कि भारत को केवल अंग्रेजी भाषा से ही एक साथ चलाया जा सकता है और आधुनिक बनाया जा सकता है जबकि यह ऐसी भाषा है जिसका प्रयोग भारतवासी पांच प्रतिशत से अधिक नहीं करते । इसका प्रयोग राजनीति करने में किया जाता है । मीडिया और अन्य संस्थाओं में इस विसंगति को बिना कोई प्रश्न उठाए स्वीकार किया गया है । केन्द्र और राज्य दोनों की सरकारों ने कुल मिलाकर इस भाषा के मुद्दे को अनदेखा किया है । केवल इतना ही नहीं, हिन्दीभाषी राज्यों में मुश्किल से ही हिन्दी भाषा राजभाषा बन पाई है, इसी प्रकार अन्य भाषाओं को भी उनके अपने-अपने राज्यों में उचित स्थान नहीं मिल पाया है । संसार में बहुत कम भाषाएं ऐसी हैं जो इतने कम समय में व्यापक रूप से पारंगत हुई हैं । निराला का उज्ज्वलित दृष्टिकोण, प्रेमचंद का आम जीवन को दर्शाना, अज्ञेय की कृत्रिमता, रेनू की जड़ता, हजारी प्रसाद द्विवेदी की शास्त्रीय शैली, जनेन्द्र कुमार की नैतिक शैली, मुक्तिबोध का भीषण संताप, शमशेर का जुनून और आवेग, रघुवीर सहाय की सशक्त निष्ठुर प्रश्नावली, कृष्ण सोबती के उपन्यासों का महाकाव्य भूगोल, श्रीकांत वर्मा का क्रोध, विनोद कुमार शुक्ल की शांत विडंबनाएं जैसे कई उदाहरण हैं जिनका संबंध इस युग के दौरान हिन्दी भाषा में उल्लिखित मानवता, नैतिकता और तार्किकता से है ।

6. संस्कृत भाषा की महत्ता के संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरु के निम्न शब्दों का उल्लेख करना उचित होगा जिन्हें तारीख 13 फरवरी, 1949 को नेशनल हेराल्ड नामक समाचारपत्र में द क्वेश्चन ऑफ लेंग्यूएज के रूप में प्रकाशित किया गया था –

"यद्यपि मैं किसी भी भाषा का विद्वान् नहीं हूं, फिर भी

मुझे भाषा की सुन्दरता से उसके संगीतरूपी वाक्यांशों से, उसके शब्दों में छिपे जादू और शक्ति से प्रेम है ... ।

यदि यह पूछा जाए कि भारत के पास सबसे बड़ा खजाना क्या है और उसकी सबसे महत्वपूर्ण विरासत क्या है, तब मैं यही कहूंगा कि वह विरासत संस्कृत भाषा और उसका साहित्य है । यह बहुत ही प्रभावशाली विरासत है और जब तक यह हमारे जीवन पर छायी हुई है तब तक भारत की संस्कृति का मूल रूप बना रहेगा । यह प्राचीन समय से चले आ रहे खजाने के साथ-साथ हमारे जीवन की एक परंपरा भी है ।

उपरोक्त संप्रेक्षण हिन्दी भाषा को भी उतना ही लागू होता है जिसे संस्कृत भाषा की एक सुन्दर पुत्री कहा जाता है । उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन और अन्य **बनाम** मानव संसाधन विकास मंत्रालय और अन्य सिविल रिट याचिका सं. 1184/1989 वाले मामले में तारीख 4 अक्तूबर, 1994 को उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में जहां तक माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा उपलब्ध कराने का संबंध है, वैकल्पिक विषय के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए या नहीं । उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि संस्कृत सीखने से भारतीय दर्शनशास्त्र को समझा जा सकता है जिस पर हमारी संस्कृति और विरासत आधारित है । न्यायालय ने उस मामले का निपटान किया जिसके कारण राजकीय शिक्षा प्रणाली ने संस्कृत भाषा के अध्ययन की आवश्यकता को समझा है और यह मत व्यक्त किया कि हमारी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने के लिए संस्कृत भाषा के महत्व को दृष्टिगत करते हुए केवल उस भाषा को वैकल्पिक विषय के रूप में लागू करना पंथनिरपेक्षता के मूल सिद्धांत के विरुद्ध किसी भी प्रकार से नहीं होगा और यह हैसियत अरबी या फारसी भाषा को नहीं दी जा सकती ।

विचाराधीन पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा को वैकल्पिक विषय के रूप में सम्मिलित किए जाने का निदेश जारी किया गया ।

7. पवित्र भाषा संस्कृत के समर्थक और उसके धर्मज वारिस यह मानते हैं कि हिन्दी भाषा एक ऐसी भाषा है जिसमें उनके अवतारों, कवियों और लेखकों ने धरती और स्वर्ग के रहस्यों से पर्दा उठाया है और मन में आने वाले बुरे विचारों से लड़ना सिखाया है और आध्यात्मिक एकता वाला दैवीय जीवन दिया है । उनके लिए हिन्दी ऐसी भाषा है जिसमें मीरा बाई ने अपने मोहक गीत गाए हैं । तुलसी और सूरदास ने अपने गुरुओं की वन्दना इसी भाषा में की है और जयशंकर प्रसाद ने अमर कहानियां रची हैं ।

8. मानव की भौगोलिक स्थिति मौलिक रूप से बदलती रहती हैं । बाधाओं के बावजूद हिन्दी का प्रयोग जारी रखने, गंभीरता से भाषा परिवर्तन लाने और उसकी अधिकता को बनाए रखने, खुलापन और नवोन्मेष तथा वंशागत स्मृति से इसका अस्तित्व सुरक्षित रहेगा तथा साथ ही इसकी स्थिरता और लचीलेपन पर भी विचार करना होगा और किसी भी प्रकार की संकीर्णता का विरोध करना होगा और केवल हिन्दी भाषी राज्यों में ही नहीं अपितु पूरे राष्ट्र में हिन्दी भाषा के प्रति आत्मविश्वास जगाना होगा ।

9. जहां तक राज्यों की राजभाषाओं का संबंध है, संविधान का अनुच्छेद 345 के अधीन किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिन्दी को उस राज्य की शासकीय भाषा के रूप में अंगीकर कर सकेगा । उत्तर प्रदेश सरकार की राजभाषा हिन्दी है जिसकी लिपि देवनागरी होगी । इस संबंध में वर्ष 1951 में एक अधिनियम पारित किया गया जिसे उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम, 1951 कहा गया है । किन्तु इसके पूर्व वर्ष 1947 में राज्य सरकार ने हिन्दी भाषा को उत्तर प्रदेश राज्य की राजभाषा के रूप में घोषित किया ।

10. संविधान में, किसी भी व्यक्ति को विशेष निदेश दिया गया है कि वह किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के

किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा । (संविधान का अनुच्छेद 350 देखिए)

11. संविधान के अधीन जिसके अनुसार इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात् ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, "भाषा आयोग" का गठन किए जाने का भी उपबंध किया गया है ताकि संघ के शासकीय कार्यों और उससे संबंधित मामलों में हिन्दी भाषा का निरन्तर प्रयोग किए जाने की रिपोर्ट दी जा सके (अनुच्छेद 344 देखिए) । इन आयोगों का गठन सम्यक् समय पर किया गया था उनकी सिफारिशों, जिनमें से अधिकांश को स्वीकार किया गया, के अनुसरण में संघ के शासकीय प्रयोजनार्थ हिन्दी भाषा का प्रयोग किए जाने को सफल बनाया गया है । संविधान के अनुच्छेद 348 में अलग से उपबंध किया गया है जिसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषा को विहित किया गया है जिस पर अब विचार किया जाएगा । हिन्दी भाषा के संबंध में उत्तर प्रदेश में लागू होने वाली विधि और उससे संबंधित कार्यकारी निर्देशों को निर्दिष्ट करना लाभकारी होगा । देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् वर्ष अक्तूबर, 1947 में हिन्दी भाषा को उत्तर प्रदेश राज्य "राजभाषा" घोषित किया गया । इस राज्य के शासकीय कार्यों में हिन्दी भाषा का निरन्तर प्रयोग किए जाने के लिए प्रशासनिक आदेश जारी किए गए । इन आदेशों का मुख्य उद्देश्य यह था कि अंग्रेजी भाषा से हिन्दी भाषा में कार्य-परिवर्तन निरन्तर होता रहे और कारबार संबंधी संव्यवहार प्रभावित न हो ।

12. भारत के संविधान से प्रवृत्त होने के पश्चात्, राज्य विधान-मंडल द्वारा उत्तर प्रदेश भाषा (बिल और अधिनियम) अधिनियम, 1950 पारित किया गया जिसके अनुसार राज्य विधान-मंडल द्वारा पुरःस्थापित सभी बिल और पारित सभी अधिनियम हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि में तैयार होने थे ।

13. उसके पश्चात्, संविधान के अनुच्छेद 345 के अनुसार उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम, 1951 भी राज्य विधान-मंडल

द्वारा पारित किया गया जिसके द्वारा हिन्दी भाषा को राज्य के सभी या किसी भी प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के रूप में अंगीकार किया गया । इस अधिनियम की धारा 2 के अधीन 30 अक्तूबर, 1952 को एक अधिसूचना जारी की गई जिसके अनुसार राज्य विधान-मंडल द्वारा पुरःस्थापित सभी बिल पारित किए गए सभी अधिनियम हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि में तैयार किए जाने थे ।

14. इसके पश्चात्, संविधान के अनुच्छेद 345 के अनुसरण में राज्य विधान-मंडल द्वारा उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा हिन्दी भाषा को राज्य के सभी या किसी भी प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के रूप में अंगीकार किया गया । इस अधिनियम की धारा 2 के अधीन 30 अक्तूबर, 1952 को अधिसूचना जारी की गई जिसके द्वारा 1 नवंबर, 1952 उस तारीख के रूप में नियत की गई जिससे हिन्दी भाषा का प्रयोग देवनागरी लिपि में निम्न के संबंध में किया जाना निश्चित किया गया –

(i) भारत के संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश और

(ii) संविधान या संसद् या राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी भी विधि के अधीन सरकार द्वारा जारी आदेश, नियम, विनियम और उपविधि ।

इसके पश्चात् राज्य सरकार ने राज्य का संपूर्ण शासकीय कार्य अंग्रेजी से हिन्दी भाषा में परिवर्तित करने का विनिश्चय किया । इस प्रयोजन के लिए उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम, 1951 की धारा 2 में उत्तर प्रदेश राजभाषा (पूरक उपबंध) अधिनियम, 1968 द्वारा संशोधन किया गया । इसके अतिरिक्त, उक्त धारा के अधीन एक अधिसूचना जारी की गई जिसके द्वारा सरकार ने राज्य के ऐसे सभी शासकीय कार्यों में जो 30 अक्तूबर, 1952 की पूर्ववर्ती अधिसूचना के अधीन सम्मिलित नहीं किए जा सके थे, हिन्दी भाषा

का देवनागरी लिपि में प्रयोग किए जाने को तारीख 26 जनवरी, 1968 से प्रभावी किया । संशोधित धारा के अधीन सरकार ने राज्य के सभी शासकीय कार्यों में अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के अंकों का प्रयोग भी अनुज्ञात किया गया ।

15. न केवल राज्य के सभी शासकीय कार्यों में हिन्दी भाषा के प्रयोग को आवश्यक बनाया गया अपितु तारीख 22 अप्रैल, 1972 को कार्यपालिक निर्देश भी दिए गए कि सभी शासकीय कार्यों में हिन्दी भाषा का अनिवार्य रूप से प्रयोग करने के आदेश का अतिक्रमण करना अनुशासनहीनता की कोटि में आएगा । तारीख 19 मार्च, 1973 को सभी विभागों के भारसाधकों और कार्यालयों के प्रदानों को निदेश दिए गए कि वे यह सुनिश्चित करें कि हिन्दी का प्रयोग किए जाने के आदेश का अनुपालन सतर्कता के साथ किया जा रहा है और यह कि इस संबंध में कोई भी रियायत नहीं बरती जाएगी । दिसंबर, 1972 में, यह निदेश जारी किए गए कि जहां भी सुविधा उपलब्ध हो, सभी शासकीय तार (टेलीग्राम) हिन्दी भाषा में भेजे जाएंगे और अप्रैल, 1973 में यह दोहराया गया कि भारत सरकार के पत्राचार संबंधी सभी कार्यों में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए । प्राविधिक और विधिक मामलों में भी हिन्दी भाषा में पत्र भेजे जाने चाहिए और, जब कभी आवश्यक समझा जाए, हिन्दी पाठ का अंग्रेजी अनुवाद उसके साथ लगा दिए जाएं । किन्तु प्रत्येक मामले में मूलपत्र हिन्दी भाषा में ही होना चाहिए ।

16. केन्द्रीय राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 की धारा 3 के अधीन, जिसके द्वारा केन्द्रीय राजभाषा अधिनियम, 1963 में संशोधन किया गया था, यह उपबंध किया गया है कि जब ऐसे दो राज्यों के बीच पत्र-व्यवहार हिन्दी भाषा में किया जाए जिनमें से एक राज्य की राजभाषा हिन्दी है और दूसरे राज्य की राजभाषा हिन्दी नहीं है, तब उस पत्राचार के साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद संलग्न किया जाएगा । राज्य सरकार ने ये निदेश जारी किए हैं कि ऐसे पत्र जो ऐसे राज्यों को भेजे जाते हैं जिन्होंने हिन्दी को अंगीकार नहीं किया है और जिनके साथ संविधान के अनुच्छेद 346

के परन्तुक के अधीन हिन्दी में पत्राचार करने का करार निष्पादित नहीं किया गया है, हिन्दी में ही प्रेषित किए जाएंगे किन्तु उनके साथ उनका अंग्रेजी अनुवाद संलग्न किया जाएगा । उपरोक्त परन्तुक के अधीन राज्य सरकार ने कई राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्रों के साथ हिन्दी में पत्राचार किए जाने का करार निष्पादित किया है । इस प्रकार यह देखा गया है कि राज्य सरकार ने राज्य के सभी शासकीय कार्यों में हिन्दी भाषा के प्रयोग को अनिवार्य किया है ।

17. संविधान के अनुच्छेद 348 के अधीन एक अलग परन्तुक है जिसके अधीन न्यायालयों की भाषा विहित की गई है । अनुच्छेद 348(1) (क) के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए किसी भी उच्च न्यायालय में हिन्दी भाषा का तब तक प्रयोग नहीं किया जा सकता जब तक कि विषय में संसद् द्वारा विधि अधिनियमित न कर दी जाए । अतः, अंतरिम अवधि के लिए अधिकांश रूप से उच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी बनी रहेगी किन्तु कतिपय कार्यपालिक विनिश्चय उच्च न्यायालय में हिन्दी भाषा के प्रयोग के लिए कुछ मामलों में किए गए हैं । वर्ष 1961 में, राज्य सरकार ने यह निदेश दिया कि उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक मामले में अधिवक्ता हिन्दी भाषा में बहस करने का विकल्प चुन सकता है । इस उपबंध को वर्ष 1966 में सिविल मामलों में दोहराया गया । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय में हिन्दी के प्रयोग में अभिवृद्धि के लिए राज्य सरकार ने भाषा विभाग में सितंबर, 1969 में तारीख 5 सितंबर, 1969 को (सं. 1608/XXI-11/59-67) जारी की जिसके अधीन निम्न दस्तावेजों को कतिपय शर्तों के साथ संबंधित पक्षकार की इच्छानुसार हिन्दी भाषा में फाइल किए जाने का उपबंध किया गया –

(क) न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले शपथ-पत्र ;

(ख) न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली पेपर-बुक में सम्मिलित कथन और दस्तावेज ।

इसके पश्चात् तारीख 24 जनवरी, 1972 को एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया जिसके द्वारा उच्च न्यायालय का न्यायाधीश कतिपय शर्तों के साथ निर्णय और डिक्री में हिन्दी भाषा का प्रयोग कर सके । "सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स" जिसे सुप्रीम कोर्ट जर्नल के नाम से जाना जाता है, का हिन्दी पाठ तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय के रिपोर्ट्स हिन्दी भाषा में संघ के विधि मंत्रालय के प्राधिकार के अधीन प्रकाशित किए जा रहे हैं । इसी मंत्रालय के प्राधिकार के अधीन हिन्दी भाषा में प्रयोग किए जाने वाले विधिक शब्दों की शब्दावली जारी की गई है । जहां तक उत्तर प्रदेश के अधीनस्थ न्यायालयों का संबंध है, अक्तूबर, 1947 में हिन्दी को उत्तर प्रदेश की राजभाषा घोषित किया गया था । अधीनस्थ सिविल, दांडिक और राजस्व न्यायालयों में हिन्दी भाषा का प्रयोग किए जाने के लिए उपबंध किया गया । सिविल न्यायालयों के संबंध में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 137 के अधीन अधिसूचना जारी की गई, एक अन्य अधिसूचना तत्कालीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 558 के अधीन जारी की गई । इसके अनुसरण में इन न्यायालयों में सामान्यतया हिन्दी भाषा में काम किया गया, यद्यपि कुछ समय तक निर्णय अंग्रेजी भाषा में दिए जाते रहे थे । राजस्व न्यायालयों के संबंध में राजस्व बोर्ड के न्यायालय और उसके अधीनस्थ न्यायालयों में हिन्दी भाषा का प्रयोग किए जाने के लिए सुसंगत नियमों में संशोधन किए गए ।

तत्पश्चात् वर्ष 1970 में उत्तर प्रदेश राजभाषा (अधीनस्थ न्यायालय) अधिनियम, 1970 पारित किया गया जिसका उद्देश्य राज्य के अधीनस्थ न्यायालयों में हिन्दी भाषा का अधिक से अधिक प्रयोग कराना था । इस अधिनियम के अधीन जारी अधिसूचना के अन्तर्गत यह उपबंध किया गया कि निम्न प्रकार के मामलों में निर्णय और आदेश पारित करने के लिए एकमात्र रूप से हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाए –

(क) ऐसे मामले जिनमें मजिस्ट्रेट एक वर्ष तक के कारावास का दंड अधिरोपित कर सकता हो ;

(ख) 2,000/- रुपए तक की वसूली के लिए मूल अधिकारिता के अधीन फाइल किए गए मामले ।

इसके अतिरिक्त, ये आदेश भी जारी किए गए कि अन्य ऐसे सभी प्राधिकारी जो न्यायिक या अर्ध-न्यायिक मामलों की सुनवाई करते हैं, जैसे राजस्व विभाग, चकबन्दी और बिक्री-कर के अधिकारियों को अपने सभी न्यायनिर्णयन हिन्दी भाषा में करने चाहिए । वर्ष 1960 में राज्य सरकार ने तारीख 3 जून, 1960 को उच्च न्यायालय को एक पत्र (सं. 1217/XXI-98-1960 एम) के माध्यम से यह सुझाव दिया कि यदि कोई आक्षेप नहीं किया जाता है, तब उच्च न्यायालय के अधीनस्थ सभी सिविल न्यायालयों को ये निर्देश जारी किए जाएं कि वे जहां तक संभव हो, ऐसे मामलों में हिन्दी भाषा में निर्णय पारित करें जो जटिल प्रकृति के नहीं हैं और जिनमें उच्च न्यायालय के समक्ष अपील करने की संभावना न हो । उच्च न्यायालय ने यह सुझाव स्वीकर किया और इस संबंध में आवश्यक निर्देश भी जारी किए । इसी प्रकार कार्य किए जाने के लिए राजस्व मामलों के संबंध में राजस्व बोर्ड को और मजिस्ट्रेट तथा पंचायत न्यायालयों के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट को ऐसे ही निर्देश जारी किए गए । पंचायत मामलों के संबंध में यह सुझाव दिया गया कि सभी निर्णय हिन्दी भाषा में लिखे जाएंगे । कुल मिलाकर सिविल, दांडिक और राजस्व न्यायालयों जैसे सभी अधीनस्थ न्यायालयों में संपूर्ण न्यायिक कार्य हिन्दी भाषा में किया जा रहा है ।"

66. इस निर्णय का पाठ उसका विश्लेषण प्रामाणिक है इसलिए संविधान में हिन्दी भाषा की महत्ता पर विचार करने के लिए इसे उद्धृत किया जाना चाहिए जिसके सुसंगत पैरा 18 से 24 तक हैं और निम्न प्रकार उल्लिखित हैं :–

"18. हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक श्री डी. एस. मिश्रा, अधिवक्ता ने कम से कम इस न्यायालय में प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी का प्रयोग आरंभ किए जाने के लिए हिन्दी के पक्ष में दृढ़तापूर्वक दलील दी है । उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 350क के

उपबंधों को निर्दिष्ट किया है जिनमें विशेष निदेश यह दिया गया है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है । संविधान के अनुच्छेद 351 में अन्तर्विष्ट निदेश का भी बलपूर्वक अवलंब लिया गया जिसके अधीन संघ का यह कर्तव्य है –

> "कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम न बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे ।"

यह निदेश किसी न किसी कारण से एक नाममात्र औपचारिकता बना रहा । यदि इस लाभकारी निदेश पर, जिसका उल्लेख संविधान के अध्याय XXII में सुस्पष्ट स्थान पर किया गया है, विचार किया जाता और इसे महत्व दिया जाता तो हिन्दी भाषी क्षेत्र में मातृभाषा को उच्च स्थान दिए जाने से संबंधित प्रश्न न्यायालयों के समक्ष तय किए जाने के लिए न उठाए जाते ।

19. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री सुनील अंबवानी ने श्री डी. एस. मिश्रा द्वारा दी गई दलील का खण्डन करते हुए यह तर्क दिया है कि केवल अंग्रेजी भाषा में उत्तर लिखने से संबंधित निदेश अनुच्छेद 351 के उपबंधों के प्रतिकूल नहीं हैं । उन्होंने अजय कुमार **बनाम** भारत संघ और अन्य [1990 लैब आई. सी. (टिप्पण) 84 इलाहाबाद] । विभागीय परीक्षा में सामान्य अंग्रेजी विषय के

प्रश्नों का उत्तर हिन्दी भाषा में दिए जाने का विकल्प रखा गया । तत्पश्चात्, यह विकल्प समाप्त कर दिया गया क्योंकि इससे संतोषजनक परिणाम नहीं मिल रहा था । यह अभिनिर्धारित किया गया कि सरकार द्वारा जिस नीति को अपनाए जाने का विनिश्चय किया गया है, उससे संविधान के अनुच्छेद 351, 14 या 16 का अतिलंघन नहीं होता है । यह मत व्यक्त किया गया कि हिन्दी भाषा से अन्यथा भाषा में प्रवीणता, यदि कुशलता शासकीय कार्यों के लिए आवश्यक है, अनुच्छेद 351 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों के विरुद्ध नहीं मानी जाएगी और न ही यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि इससे किसी भी नागरिक के किसी भी अधिकार का अतिक्रमण होता है । इसके अतिरिक्त सामान्य अभ्यर्थी और सामान्य अंग्रेजी की परीक्षा में बैठने वाले अभ्यर्थियों के बीच कोई भी अन्तर न होने के कारण किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं किया जा सकता ।

20. सुनील कुमार सहस्त्र बुद्धे **बनाम** निदेशक, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर (ए. आई. आर. 1982 इलाहाबाद 398) वाले मामले में प्रौद्योगिकी संस्थान अधिनियम (1961 का अधिनियम सं. 59) की धारा 38(ग) के अधीन विरचित अध्यादेश के अंतर्गत अंग्रेजी भाषा को आई. आई. टी. में शिक्षण के माध्यम की भाषा के रूप में अधिकथित किया । याची ने पी.एच-डी. के लिए अपनी थीसिस (शोध-प्रबंध) हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का आग्रह किया । याची के इस दावे पर अनुच्छेद 351 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए विचार किया गया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह दावा संविधान के उपबंधों के आधार पर नहीं किया गया है । याची को हिन्दी भाषा में अपनी थीसिस प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए था या नहीं, जबकि हिन्दी भाषा को एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया जा चुका था, एक राजनीतिक प्रश्न है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन प्रदत्त अभिव्यक्ति का अधिकार किसी नागरिक को इस सीमा तक प्रदत्त नहीं किया जा

सकता है कि वह अपनी इच्छानुसार चुनी हुई किसी विशेष भाषा में अध्ययन कर सके । अभिव्यक्ति के अधिकार का अर्थ भिन्न है और इस अधिकार का प्रयोग ऐसी भाषा को अपनाने के लिए नहीं किया जा सकता उस संस्था के शिक्षण की भाषा से भिन्न है जिसमें दाखिला लिया गया है । इसी संबंध में उम्मीद सिंह और अन्य **बनाम** जोधपुर विश्वविद्यालय [ए. आई. आर. 1988 (टिप्पण) 204] वाले मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चय किया गया है । जोधपुर विश्वविद्यालय अधिनियम (1962 का अधिनियम सं. 17) की धारा 34(1) के अधीन विरचित अध्यादेश सं. 35 में जोधपुर विश्वविद्यालय के तीन-वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम के द्वितीय वर्ष में सीधे प्रवेश पाने के लिए माध्यमिक परीक्षा पाठ्यक्रम में अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य बनाने हेतु संशोधन किया गया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस संशोधन से संविधान के अनुच्छेद 351 का अतिक्रमण नहीं होता है क्योंकि केवल हिन्दी भाषा में ही शिक्षा प्राप्त करने के लिए कोई भी सांविधानिक अपेक्षा नहीं की गई थी और न ही ऐसी कोई अपेक्षा की गई है कि विश्वविद्यालय को अन्य भाषाओं में शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए ।

21. कुछ हिन्दी-विरोधी गतिविधियां ऐसी सामने आई हैं जिनसे अनुच्छेद 351 का अतिक्रमण होता है । आर. आर. दलावी **बनाम** तमिलनाडु राज्य (ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 1559) वाले मामले में तमिलनाडु सरकार द्वारा हिन्दी विरोधी आन्दोलनकारियों को पेंशन मंजूर करने के लिए पेंशन योजना बनाई गई । इस योजना को चुनौती दी गई और परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस योजना में ऐसी बुराई है जिससे लोगों के संबंध विघटित हो सकते हैं और वातावरण आक्रामक हो सकता है और इसके लिए विधान-मंडल से मंजूरी भी नहीं ली गई है और इससे अनुच्छेद 351 का अतिक्रमण भी होता है । भारत संघ **बनाम** मुरासोली मारन (ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 225) वाले मामले में हिन्दी भाषा के प्रसार में वृद्धि और केन्द्र

सरकार के कर्मचारियों को सेवा में रहते हुए हिन्दी भाषा में प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रपतीय आदेश जारी किया गया । याची ने उस मामले में राष्ट्रपतीय आदेश की विधिमान्यता को चुनौती दी जिसे उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया । किन्तु उक्त विनिश्चय के विरुद्ध अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय के निर्णय को उलट दिया गया और यह मत व्यक्त किया गया कि राष्ट्रपतीय आदेश सरकारी कर्मचारियों से कुछ भी नहीं छीन सकता । पुरस्कार मात्र प्रेरणा राशि के रूप में दिए गए थे । वह प्रेरणा राशि अनुच्छेद 344 के अनुसरण में दी गई थी । वी. आर. वी. श्री रामा राव **बनाम** तेलुगू देशम, राजनीतिक दल और अन्य वाले मामले में अनुच्छेद 351 के उपबंधों का निर्वचन किया गया । यह प्रतीत होता है कि तेलुगू देशम के नाम से राजनीतिक संस्था के रूप में पंजीकरण कराने पर आक्षेप किया गया । तेलुगू भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 344(1) और 351 के अधीन मान्यताप्राप्त 15 राजभाषाओं में से एक है । यह मत व्यक्त किया गया कि तेलुगू भाषा के कुल विकास के लिए की गई कोई भी अपील राष्ट्र-विरोधी नहीं हो सकती और न ही वह भारत की अखण्डता की प्रभुता को विच्छिन्न कर सकती है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अधीन परिकल्पित है । दूसरी ओर, वास्तव में राजभाषा और संस्कृति का संपूर्ण विकास, जो मर्यादा के नाम पर किया जाए, सभी संस्कृतियों को एकीकृत करने में एक लंबा समय लेता है जिसे भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है । यह तर्क देना कि किसी विशेष भाषा के आशयित विकास के लिए जो कार्य किया गया उससे विघटन को बढ़ावा मिला है या भारत की प्रभुता और अखण्डता प्रभावित हुई है, एक दूषित विचार है ।

22. श्री सुनील अंबवानी ने प्रबंधक समिति और एक अन्य **बनाम** जिला विद्यालय निरीक्षक और अन्य (ए. आई. आर. 1977 इलाहाबाद 164) वाले मामले में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के बहुचर्चित विनिश्चय और नरेन्द्र कुमार **बनाम** राजस्थान उच्च न्यायालय और अन्य (ए. आई. आर. 1991 राजस्थान 33) वाले

मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया । मैंने इन दोनों मामलों पर गहराई से विचार किया है और यह पाया है कि इससे याची की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल श्री डी. एस. मिश्रा द्वारा दी गई दलील का खण्डन नहीं होता है । **नरेन्द्र कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में यह प्रश्न उठाया गया कि क्या राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 की धारा 47, भारत के संविधान के भाग XXII का संबंध है उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में प्रयोग की जाने वाली भाषाओं सहित संघ की राजभाषा को दृष्टिगत करते हुए यह एक सुसंगत भाग है । भारत के संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् उसके उपबंध किसी भी विद्यमान विधि के उपबंधों पर अभिभावी होंगे और चूंकि वे संविधान के उपबंधों के साथ असंगत हैं इसलिए वे लागू ही नहीं होंगे । हिन्दी भाषा का प्रयोग वैकल्पिक भाषा के रूप में किया जाना असंवैधानिक नहीं है । इसका प्रयोग राजभाषा अधिनियम की धारा 7 के अधीन किया जाता है जो कि संविधान के अनुच्छेद 344ख के अधीन राष्ट्रपतीय आदेश के साथ असंगत नहीं है । राष्ट्रपतीय आदेश और राजभाषा अधिनियम के कार्यक्षेत्र अलग-अलग हैं । उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा के संबंध में राष्ट्रपतीय आदेश के खण्ड 12 में कतिपय उपबंध किए गए हैं । उच्च न्यायालयों की भाषा के संबंध में राष्ट्रपतीय आदेश के अधीन यह उपबंध किया गया है कि विधि मंत्रालय सम्यक् अनुक्रम में हिन्दी और राज्य की अन्य राजभाषाओं के निर्णयों, डिक्रियों और आदेशों के पारित किए जाने के प्रयोजनार्थ वैकल्पिक रूप से राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से प्रयोग किए जाने के लिए विधान की व्यवस्था कर सकता है, जैसा कि आयोग की सिफारिशों में किए गए रूपान्तरणों में समिति द्वारा सुझाव दिया गया है । यह प्रतीत होता है कि उपरोक्त राष्ट्रपतीय आदेश को प्रभावी बनाने के लिए वर्ष 1963 में संसद् द्वारा बनाए गए राजभाषा अधिनियम की धारा 7 निम्न प्रकार अधिनियमित की गई –

"7. उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिन्दी या

अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग – नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित कर दिया जाता है वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।"

23. **प्रबंधक समिति** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष एक याचिका फाइल की गई जिसे हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि में तैयार किया गया था । इसके संबंध में यह प्रश्न उठाया गया कि क्या ऐसी याचिका उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण की जा सकती है और उसमें न्यायनिर्णयन किया जा सकता है या नहीं । उस मामले में उठाया गया प्रश्न संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन किए गए सरकारी आदेश के अनुसरण में निर्णय या डिक्री या आदेश पारित किए जाने के संबंध में नहीं था अपितु यह प्रश्न केवल उस याचिका के संबंध में न्यायनिर्णयन किए जाने से संबंधित उठाया गया था जो हिन्दी भाषा में लिखी और प्रस्तुत की गई थी । न्यायालय ने यह प्रश्न किया कि न्यायालयों के प्रयोग के लिए कोई भाषा नियत की जा सकती है या नहीं और यह कि यह मामला संविधान के अनुच्छेद 343 और 345 पर ही आश्रित नहीं रह सकता जो कि परिणामस्वरूप अनुच्छेद 348 के उपबंधों के आधार पर विनिश्चित किया जाना चाहिए । न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 348(2) के कार्यक्षेत्र पर विचार करते हुए मत व्यक्त किया है कि इसके निबंधनों से यह स्पष्ट हो गया है और जब तक संसद् कोई प्रतिकूल विधि अधिनियमित नहीं करता है तब तक उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय अंग्रेजी भाषा में ही कार्य

करेंगे । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है इस अनुच्छेद का खण्ड (2) राज्यपाल को, अभिवाक्, दलीलों और दस्तावेजों को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने हेतु अनुज्ञात करने के लिए सशक्त बनाता है और जब एक बार राज्यपाल ऐसी अधिसूचना जारी कर देता है तब कोई भी व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन हिन्दी भाषा में ऐसी याचिका फाइल कर सकता है । अतः, संविधान के अनुच्छेद 348 का खण्ड (2) के अधीन राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति के साथ उच्च न्यायालय में कार्यवाही के दौरान हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकता है किन्तु राज्यपाल की यह शक्ति उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय और डिक्री पारित किए जाने के संबंध में प्रयोग नहीं की जा सकती, अतः राजभाषा अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में ही ऐसा किया जा सकता है और इस अधिनियम की धारा 6 और 7 के अधीन हिन्दी भाषा का देवनागरी लिपि में वैकल्पिक रूप से प्रयोग किया जाना अनुज्ञात किया गया है ।

24. **प्रबंधक समिति** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय में पूर्व में हिन्दी भाषा का प्रयोग किए जाने के संबंध में उसके भूतलक्षी इतिहास पर विचार किया गया जिसमें यह मत व्यक्त किया गया कि न्यायालय की कार्यालयिक भाषा का अन्य किसी भाषा में परिवर्तन चाहे वह राजनीतिक या राष्ट्रवादी भावना या दोनों के अधीन किया जाए, घोर आक्षेप, शंकाओं और विरोध का सामना करना ही पड़ता है । राष्ट्रवादी लोग इस बात से व्यथित होते हैं कि उनके राज्यक्षेत्र में हस्तक्षेप किया जा रहा है । इसके प्रतिकूल सुधार लाने वाले लोग विदेशी भाषा के इस उत्पीड़न को सहन करना नहीं चाहते । वे नई भाषा का आरंभ चाहते हैं । समस्त संसार के न्यायालयों की भाषा में परिवर्तन आते रहे हैं जिसके सभी साक्षी हैं और एक भाषा दूसरी भाषा से प्रतिस्थापित होती रही है । न्यायालय द्वारा किए गए अन्य संप्रेक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और इस मुद्दे के साथ सुसंगत हैं । मैं इस निर्णय के पैरा 12 और 16 को उद्धृत करना महत्वपूर्ण समझता हूं जिनका

संबंध हिन्दी भाषा को न्यायालय की भाषा बनाने से है –

> "12. उत्तर प्रदेश राज्य में न्यायालयों की भाषा बनाए जाने के उद्देश्य से हिन्दी भाषा की प्रोन्नति संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अनुसरण में किए गए कई कार्यों का परिणाम है । यह देखा जा सकता है कि संविधान का अनुच्छेद 348(1) के अधीन यह परिकल्पित है कि संसद् द्वारा कोई विधि अधिनियमित की जाए, इसी अनुच्छेद का खण्ड (2) राज्य के राज्यपाल द्वारा जारी आदेश के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त करने के संबंध में है । इस खण्ड का परन्तुक इस संबंध में है कि इस खण्ड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि इस परन्तुक में उल्लिखित बातों का वर्जन करते हुए उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में हिन्दी भाषा के प्रयोग को अनुच्छेद 348(2) के अधीन राज्य के राज्यपाल द्वारा पारित आदेश द्वारा प्राधिकृत किया जा सकता है । इस उपबंध से संविधान के निर्माताओं की दूर-दृष्टि और नीति भलीभांति प्रतिबिम्बित होती है जिन्होंने संसद् द्वारा विधि बनने तक हिन्दी भाषा का प्रयोग न्यायालयों में किए जाने पर रोक लगाए रखी परन्तु यह तब जब कि उच्च न्यायालयों में सभी कार्यवाहियां हिन्दी भाषा में या उस राज्य की अन्य राजभाषा में न चलने लगे । इस प्रकार, उत्तर प्रदेश राज्य के उच्च न्यायालय की सभी कार्यवाहियों के दौरान अंग्रेजी भाषा के स्थान पर हिन्दी भाषा का समीचीन प्रतिस्थापन किए जाने का आशय संविधान के अनुच्छेद 348(2) के उपबंधों से लिया गया है ।
>
> 13. ....
>
> 14. ....
>
> 15. ....

16. इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन तारीख 5 सितंबर, 1969 की अधिसूचना का समुचित निर्वचन किए जाने पर हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि में तैयार और फाइल की गई रिट याचिका का न्यायनिर्णयन उत्तर प्रदेश राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा कराए जाने में कोई संदेह नहीं रह जाता है । वास्तव में, इस अधिसूचना की भाषा इतनी व्यापक है जिसमें सभी अभिवाक्, वादपत्र, लिखित कथन, रिट याचिकाएं और अन्य दस्तावेज सम्मिलित हैं जो इन कार्यवाहियों में फाइल किए जाने के लिए अपेक्षित हैं । इस संबंध में अपनाए गए बहुत से तरीकों से, जिन्हें हमने अपने निर्णय में निर्दिष्ट किया है, यह स्पष्ट हो जाता है कि विधि के अधीन हमारे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हिन्दी भाषा में, उसकी इच्छानुसार, किसी मुकदमेबाज या उसके अधिवक्ता की सुनवाई न करने की शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है । यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष यह खुला विकल्प है कि वह अपना निर्णय या डिक्री या आदेश हिन्दी भाषा में, यदि वह चाहे, पारित कर सकता है किन्तु उसे ऐसा करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता । तथापि, यदि वह न्यायाधीश कोई आदेश या डिक्री आदि हिन्दी भाषा में पारित करता है तो केवल उस पर यह शर्त अधिरोपित की जा सकती है कि वह हिन्दी भाषा में पारित किए गए निर्णय का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भी उपलब्ध कराएगा जो उच्च न्यायालय द्वारा प्राधिकृत होगा । उच्च न्यायालय में कार्यवाहियों के दौरान हिन्दी भाषा के प्रयोग के संबंध में सम्पूर्ण विधिक स्थिति इसी प्रकार है ।"

25. हिन्दी का यह दुर्भाग्य है कि एक ओर राज्य द्वारा इसे अनदेखा किया जाता है और दूसरी ओर इसके अपने जिम्मेदार लोगों द्वारा विरोध भी किया जाता है । **प्रबंधक समिति** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय के बावजूद, जिसके द्वारा यह दृढ़तापूर्वक अधिकथित किया गया

है कि संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल द्वारा जारी अधिसूचना को दृष्टिगत करते हुए कतिपय परिसीमाओं के साथ हिन्दी भाषा का प्रयोग अनुज्ञेय है, श्री सुनील अम्बवानी ने यह दलील दी है कि राजभाषा अधिनियम की धारा 7 अनुच्छेद 348(1) के उपबंधों को अभिनिषेध करती है क्योंकि इसके स्थान पर निर्णय और डिक्री के अंग्रेजी अनुवाद की प्रति साथ लगानी होगी जो कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणित की जाएगी । एच. एम. सीरवाई द्वारा लिखित पुस्तक कांस्टीट्यूशनल ला ऑफ इंडिया, 1996 का संस्करण, जिल्द III, पृष्ठ 2585 के पैरा 23.10 का अवलंब लिया गया जो निम्न प्रकार है –

> "23.10 यदि न्यायिक प्रशासन, न्यायालय और अधिवक्ताओं की एकता परिरक्षित की जाती है, तब यह आशा की जानी चाहिए कि ऐसा करने के लिए अनुज्ञा नहीं दी जाएगी । प्रविष्टि 78 की सूची 1 में संसद् को उच्च न्यायालय के समक्ष विधि व्यवसाय करने के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है । अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अधीन स्वायत्त भारतीय विधिज्ञ परिषद् का गठन किया गया है । आज के समय में विधि व्यवसाय एक ऐसा व्यवसाय है जिसे पूरे भारत में कहीं भी किया जा सकता है । यदि भिन्न-भिन्न उच्च न्यायालयों की भाषा भिन्न-भिन्न होगी तब समस्त भारत में यह व्यवसाय करना संभव नहीं होगा और प्रत्येक उच्च न्यायालय भाषा के बंधन को लेकर अलग-थलग हो जाएगा । अन्य न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों का अवलंब लेने से भी वंचित होना पड़ेगा और न्यायिक प्रशासन के लिए वांछनीय केन्द्रीय विधि का एक रूप में निर्वचन किया जाना संभव नहीं होगा । उच्चतम न्यायालय का कार्य और उच्चतम न्यायालय के लिए की जाने वाली न्यायाधीशों की भर्ती बुरी तरह

> प्रभावित होगी क्योंकि उच्चतम न्यायालय के लिए न्यायाधीशों की भर्ती ऐसे उच्च न्यायालयों से नहीं की जा सकेगी जहां पर उच्चतम न्यायालय में प्रयोग होने वाली भाषा से भिन्न भाषा का प्रयोग होता हो । न्यायिक प्रशासन पर उच्चतम न्यायालय का एकरूपी प्रभाव सक्रिय रूप से नहीं पड़ेगा और उसकी न्यायाधीशों की गुणवत्ता भी आवश्यक रूप से प्रभावित होगी ।"

67. इसके पश्चात् न्यायालय ने अपना मत व्यक्त करते हुए उच्च न्यायालय के विभागीय प्रोन्नति परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर देने संबंधी हिन्दी भाषा के प्रयोग को अनुज्ञात करने पर विचार किया और इसका भी उदाहरण दिया कि अंग्रेजी भाषा क्यों आवश्यक है । इस भाषा का ज्ञान न्यायालयिक कार्य के लिए महत्वपूर्ण है । अंग्रेजी भाषा का प्रयोग शिक्षण के माध्यम की भाषा के रूप में किए जाने पर भी **सुश्री अरुणा रॉय और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष किया गया । उक्त निर्णय में संविधान सभा में धार्मिक निदेशों और धार्मिक भाषाओं को मान्यता देने और स्वीकार किए जाने से संबंधित विचार-विमर्शों पर भी चर्चा की गई ।

68. मुझे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अवर न्यायाधीश के रूप में सीधे इस मुद्दे पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ जब यह मुद्दा उठा – मुद्दा यह था कि उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार कार्यालय को हिन्दी में संलग्नकों के साथ रिट याचिका को जब तक भविष्य में अनुवादित प्रति सहबद्ध नहीं की जाती, स्वीकार न करने का निदेश देते हुए न्यायिक आदेश पारित किया गया । **प्रबन्धक समिति** (पूर्वोक्त) वाले मामले में जिसमें विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा यह ध्यान नहीं दिया गया था जिन्होंने उक्त निदेश जारी किया था और खंड न्यायपीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए जो संवैधानिक उपबंधों पर चर्चा किए बिना उक्त निदेश **श्रीमती राजेश्वरी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** (2012 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 54488) तारीख 16 अक्तूबर, 2012 को

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 368.

विनिश्चित वाले मामले में भी आबद्धकर नहीं था । ऐसा करते समय न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय के **डा. विजय लक्ष्मी साधो** बनाम **जगदीश**[1] वाले मामले के निर्णय को भी निर्दिष्ट किया । यह एक निर्वाचन अर्जी से उद्भूत मामला था जहां यह मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष अंग्रेजी के बजाय हिन्दी में लिखा गया था । निर्वाचित अभ्यर्थी द्वारा यह आक्षेप किया गया कि निर्वाचन अर्जी को इस आधार सहित कई आधारों पर संक्षिप्ततः खारिज किया जाना चाहिए कि यह मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय नियम के अनुसार अंग्रेजी में पेश नहीं किया गया । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेप अस्वीकार किया गया जिसके विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका फाइल की गई और उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के मत को कायम रखा । उक्त निर्णय में यह सुस्पष्ट है कि यह सुनिश्चित रूप से अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय नियम जिसमें यह उपबंध है कि निर्वाचन अर्जी अंग्रेजी में लिखी जाए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन जारी अधिसूचना पर अभिभावी नहीं होगा । इस मुद्दे पर मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के दो विद्वान् एकल न्यायाधीशों के बीच भिन्न-भिन्न मत था और बाद वाले निर्णय में पहले वाले निर्णय को अनवधानता के कारण दिया गया कहा गया । उच्चतम न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि मामला बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए यदि समवर्ती न्यायपीठ पहले वाले निर्णय को अस्वीकार करता है किन्तु ऐसा करते हुए उच्चतम न्यायालय ने पैरा 27 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "27. हमारे विवेक से जयभान सिंह वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 348(2) पर उच्च न्यायालय नियम के नियम 2 प्राथमिकता देते हुए किया गया निर्वचन भ्रामक है । यह प्रतीत होता है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस स्थिति की अनदेखी की कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 के अधीन शक्तियों का

---

[1] (2001) 2 एस. सी. सी. 247.

प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियम के प्रक्रिया के नियम हैं और अधिष्ठायी विधि गठित नहीं करते और ये नियम संविधान के अनुच्छेद 348(2) के संवैधानिक उपबंधों के आशय को प्रभावित नहीं कर सकते । जयभान सिंह वाले मामले में उच्च न्यायालय के नियम के नियम (ख) को जो उच्च स्थान दिया गया है, वह न केवल स्पष्ट संवैधानिक उपबंधों का अतिक्रमण करता है बल्कि अधिनियम की धारा 86 में एक खंड भी सम्मिलित करता है जो अस्तित्व में नहीं है । अनुच्छेद 348(2) के अधीन जारी अधिसूचना के प्रभाव पर विचार करने का सम्पूर्ण दृष्टिकोण गलत प्रतीत होता है । इसके अलावा, नियमों के नियम 2(ख) के अनुसार निर्वाचन अर्जी न फाइल करने की खामी ऐसी खामियों में से एक नहीं है जो अधिनियम की धारा 81, 82 और 117 के अधीन नहीं आती जिससे कि अधिनियम की धारा 86 की कठोरता को लागू किया जा सके, जैसा कि **देवी लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में उचित ही अभिनिर्धारित किया गया है । क्या अभिकथित खामियों के कारण कोई अन्य परिणाम हो सकता है, यह निर्वाचन अर्जी के विचारण पर अवधारणीय अन्य कारकों पर निर्भर होगा किन्तु यह अभिनिर्धारित करना कि अधिनियम की धारा 86(1) उच्च न्यायालय नियम के नियम 2(ख) के अननुपालन के लिए लागू होगा, सही नहीं है । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 1999 के अन्तर्वर्ती आवेदन सं. 5957 आवेदन का अस्वीकार किया जाना और यह अभिनिर्धारित करना सही था कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल निर्वाचन अर्जी को निर्वाचन अर्जी के पेश किए जाने से संबंधित उच्च न्यायालय नियम के नियम 2(ख) के अभिकथित अननुपालन के लिए अधिनियम की धारा 86(1) के अधीन खारिज नहीं की जा सकती ।"

69. अतः यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार करते समय सुनिश्चित रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि उच्च न्यायालय नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए विरचित किए गए फिर भी वे

अनुच्छेद 348(2) और उसके अधीन जारी अधिसूचना के संवैधानिक अधिदेश से उच्च स्थान ग्रहण नहीं कर सकते । मैं इस विशिष्ट पैरा को निर्दिष्ट कर रहा हूं क्योंकि इस मामले में भी पटना उच्च न्यायालय का नियम जो उपरोक्त उद्धृत नियम के अनुसार अंग्रेजी में अभिवचन के पेश किए जाने की अपेक्षा करता है और इस मुद्दे की बाबत तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन फाइल रिट याचिका और कर निर्देशों के विस्तार तक इसका समर्थन करता है ।

70. मुझे **श्रीमती राजेश्वरी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में व्यक्त मत को दोहराने का अवसर मिला । **प्रबन्ध समिति कन्या विद्यालय, किसरोली और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में जहां मैंने उच्चतम न्यायालय के कई अन्य विनिश्चयों पर ध्यान दिया । उक्त निर्णय के पैरा 5 से 7 को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

> "5. जहां तक राज्यों का संबंध है भारत के संविधान का अनुच्छेद 348 का उपखंड (2) राज्य सरकार को इस बारे में अधिसूचनाएं जारी करने की स्पष्टतः शक्ति प्रदान करता है । इस मुद्दे पर मेरे द्वारा **श्रीमती राजेश्वरी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में पहले ही कल आदेश पारित किया गया है किन्तु न्यायालय विनायक हरि कुलकर्णी **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2007 की रिट याचिका सं. 6957 वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय और ठाणे बार एसोसिएशन और एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, तारीख 7 मई, 2010 को विनिश्चित का भी परिशीलन किया जो बम्बई उच्च न्यायालय नियम के अधीन देशी भाषा मराठी में उपाबंधों के साथ रिट याचिकाओं की स्वीकृति का उपबंध करने वाले नियम के कारण खंड न्यायपीठ द्वारा हुए विवाद का प्रतिनिर्देश किया गया था । उक्त नियम को खंड न्यायपीठ द्वारा अभिखंडित किया गया था इसलिए पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष प्रतिनिर्देश का अवसर उद्भूत हुआ । पूर्ण न्यायपीठ के दो न्यायाधीशों

---

[1] 2013 (4) ए. डब्ल्यू. सी. 3479.

की बहुमत की यह राय थी कि मराठी में रिट याचिका का ग्रहण न किया जाना महाराष्ट्र के वादकारियों के लिए बहुत अप्रिय होगा और उन्होंने इस प्रकार मत व्यक्त किया –

> '25. उपरोक्त मताभिव्यक्तियों के होते हुए भी, प्रशासनिक तौर पर संस्थागत स्तर पर कुछ वैकल्पिक उपाय खोजना कठिन नहीं हो सकता । माननीय मुख्य न्यायमूर्ति और सभी अन्य माननीय न्यायाधीशों से इस व्यापक कठिनाई को दूर करने का अनुरोध किया जा सकता है जो वादकारी महाराष्ट्र राज्य के इस न्यायालय की सभी न्यायपीठों के समक्ष संभवतः झेलते हैं और वादकारियों को वहन करने योग्य लागत पर न्याय परिदान प्रणाली की पहुंच आसान बनाने के लक्ष्य तक पहुंचा जा सके । ऐसे कई दृष्टांत हुए हैं जहां वादकारियों और पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं को भी मराठी में संबोधित करने की अनुज्ञा दी गई या आक्षेपित मराठी दस्तावेजों/आदेशों को न्यायपीठ का भाग बनने वाले एक न्यायाधीश द्वारा दूसरे न्यायाधीश को स्पष्ट किया गया । कई बार हमने यह ध्यान दिया है कि आक्षेपित आदेशों की मूल मराठी प्रतियां उनके अंग्रेजी पाठ से अधिक विश्वसनीय हैं । अंततः, न्याय करना महत्वपूर्ण है न कि अर्थगत तकनीकियों पर जाना । हम अपनी न्यायनिर्णायक भूमिका में न्यायाधीश के रूप में इन तकनीकों के जाल में फंसने की अनुज्ञा नहीं दे सकते । वहीं, बार और बेंच को अपीली पक्ष नियम के अध्याय 17 के नियम 2(i) के स्थान पर अनुकल्पी तंत्र को खोजने में हाथ मिलाना चाहिए । एकमात्र इस आधार पर रजिस्ट्रार कार्यालय के लिए याचिका को स्वीकार करने से इनकार करना कि मराठी में आक्षेपित आदेश का अंग्रेजी अनुवाद याचिका में संलग्न नहीं किया गया है, बहुत अप्रिय कार्रवाई होगी और परिणामतः न्याय चाहने वाले लोगों के लिए आरम्भ में ही न्याय तक पहुंच बनाने से मनाही होगी । क्या होगा यदि महाराष्ट्र के राज्यपाल भारत

के राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से अनुच्छेद 348(2) के अधीन निकट भविष्य में अपनी शक्तियों का अवलंब लें ? महाराष्ट्र राज्य के इस उच्च न्यायालय के सभी न्यायपीठों को उस दशा में मराठी में कार्यवाही अपनानी होगी । अतः हम सभी लोगों को याचियों और वादकारियों से अपीली मंच पर आवेदन करने के लिए कहने के बजाय यथासंभव शीघ्र इस गंभीर और भड़कीले मुद्दे पर विचार करना चाहिए । यह नहीं कहा जा सकता कि पूर्ण सदन को अपीली पक्ष नियमों के नियम 2(i) के अभाव में भी प्रशासनिक तंत्र विकसित करने की आवश्यक शक्तियां नहीं हैं जिससे कि आक्षेपित आदेश, जी. आर. या मराठी भाषा की प्रति के साथ संलग्न रिट याचिकाओं के रजिस्ट्रीकरण की अनुज्ञा दी जा सके और संबद्ध न्यायपीठ को, याची को कोई अनुतोष मंजूर करने के पूर्व अंग्रेजी अनुवाद फाइल करने का निदेश जारी करने के विकल्प की छूट दी जा सके ।'

6. तीसरे माननीय न्यायाधीश ने उक्त मत से भागतः भिन्न मत व्यक्त किया और प्रबन्धक समिति और एक अन्य **बनाम** जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद और अन्य (ए. आई. आर. 1977 इला. 164) वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के निर्णय के तर्क को अनुमोदित किया । विद्वान् न्यायाधीश ने सम्पूर्ण संवैधानिक उपबंधों, बम्बई उच्च न्यायालय नियमों का खंडन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि मराठी के दस्तावेज निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार किए जाने योग्य हैं –

> '72. ससम्मान, नादगोडा वाले मामले में संविधान के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख नहीं किया गया । खंड न्यायपीठ ने भी इसी तरह के नियमों के समरूप उपबंध की उपस्थिति पर ध्यान नहीं दिया । आगे, खंड न्यायपीठ का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित नहीं किया गया कि अनुच्छेद 348 भारत के संविधान के भाग 17 के अध्याय 2 के अधीन आता है जिसका शीर्षक 'राजभाषा' है । इसका अध्याय 1 संघ की

भाषा के बारे में है और इसके उप-अनुच्छेद 343 में यह उल्लेख है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी । इस संविधान के आरम्भ से 15 वर्ष की अवधि तक अनुच्छेद 343(1) के में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी संघ के सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था । अनुच्छेद 343(2) के परन्तुक में यह उल्लेख है कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा 15 वर्ष की उक्त अवधि के दौरान अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकेगा । तत्पश्चात्, अनुच्छेद 343 और 344 इसी अध्याय में है । भारत संघ **बनाम** मुरासोलीमारन (ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 225) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ये अनुच्छेद संघ के सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी में परिवर्तन की प्रक्रिया पर विचार करते हैं । परम उद्देश्य का उपबंध अनुच्छेद 351 में है जिसमें हिन्दी भाषा के प्रसार और विकास तथा भारत की सम्मिश्र संस्कृति की अभिवृद्धि का उल्लेख है । [अनुच्छेद 344(6)] [इस विनिश्चय का पैरा 30 और 31 से 36 देंखे]

73. आगे अध्याय 2 आता है जो 'प्रादेशिक भाषाएं' के बारे में है । अनुच्छेद 345 में यह उल्लेख है कि अनुच्छेद 346 और अनुच्छेद 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिन्दी को उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगा । अनुच्छेद 345 के परन्तुक में यह उल्लेख है कि जब तक राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारम्भ से

ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था । अनुच्छेद 346 और 347 एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा का उल्लेख करता है । इस अनुच्छेद में भी कोई बाध्यता नहीं है और हिन्दी भाषा राज्यों के बीच पत्रादि की शासकीय भाषा हो सकती है ।

74. अध्याय 3 में अनुच्छेद 348 अन्तर्विष्ट है जिसके उप-अनुच्छेद 1 का उप-खंड (क) और (ख) है वहीं उप-अनुच्छेद 2 है जो राज्य सरकार को राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस राज्य के उस उच्च न्यायालय में जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, कार्यवाहियों में हिन्दी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा परन्तु, अनुच्छेद 348(2) की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी । अतः, यह इस प्रकार नहीं है मानो कोई बाध्यता हो कि कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होनी चाहिए और भविष्य में इससे विपथन नहीं हो सकता है । जहां तक उच्च न्यायालयों में कार्यवाहियों का संबंध हैं, विपथन हो सकता है और अनुच्छेद 348(2) के अनुपालन के पश्चात् अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को समाप्त किया जा सकता है । यदि स्वयं अनुच्छेद की ऐसी भाषा है तो कोई यह समझने में असफल क्यों रहता है कि क्यों नियम 2(i) का परन्तुक असंवैधानिक है और संविधान के अनुच्छेद 348(1)(क) का अतिक्रमणकारी है ।

75. उच्चतम न्यायालय के ऐसे विनिश्चय में भी जिसका प्रतिनिर्देश नादगौड़ा वाले मामले में किया गया है, कुल मिलाकर यह अभिनिर्धारित किया गया है कि हिन्दी या किसी अन्य भाषा में उच्चतम न्यायालय में अभिवचन या बहस अनुज्ञेय नहीं है (मधु लिमये **बनाम** वेदमूर्ति ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2608 वाला मामला देखें) । उसमें अन्तरायक ने यह कहते हुए हिन्दी में बहस करने पर बल

दिया कि वह अंग्रेजी नहीं जानता । न्यायालय ने अन्तरायक को कई विकल्प सुझाए किन्तु वह उसे दिए गए सुझावों और विकल्पों का फायदा नहीं उठा सका । ऐसी परिस्थितियों में, मध्यक्षेपण रद्द कर दिया गया । ससम्मान और मतभिन्न होने का आग्रह करते हुए कि कैसे यह निर्णय अधिकथित करता है कि ऐसा कोई प्रतिवेदन नहीं हो सकता या यदि प्रतिवेदित किया गया तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती जो अंग्रेजी भाषा में है किन्तु इससे जुड़े उपाबंध मराठी भाषा में हैं, मुझे कतई स्पष्ट नहीं हैं । अतः, बहुमत द्वारा व्यक्त राय उचित ही नादगौड़ा वाले मामले में व्यक्त विचार की शुद्धता को कायम नहीं रखता ।

76. प्रबन्धक समिति और एक अन्य **बनाम** जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद और अन्य (ए. आई. आर. 1977 इला. 164) वाले मामले में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 348(2) के अधीन सरकार द्वारा एक बार अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात्, व्यक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका लिखने के लिए अधिसूचना द्वारा विहित भाषा का प्रयोग करने का विधिक अधिकार अर्जित करता है । ऐसी परिस्थितियों में, मेरी यह राय है कि नादगौड़ा वाले मामले का निर्णय सही स्थिति अधिकथित नहीं करता ।

77. अतः, मैं यह अभिनिर्धारित करते हुए प्रश्न सं. 1 का उत्तर देने की ओर अग्रसर होता हूं कि उक्त निर्णय जहां तक यह परन्तुक को अभिखंडित करता है, को उलटा जाना अपेक्षित है । मैं तर्क की उस प्रक्रिया जिसके द्वारा नादगौड़ा वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा कार्यवाही की गई थी, इस निष्कर्ष पर पहुंचने में समर्थन प्राप्त करता हूं । ए. एस. नियम के अध्याय 17 और विशेषकर नियम 2(i) जो 'संलग्न वस्तु' की अपेक्षा करता है ।

78. अब, मात्र परन्तुक को अभिखंडित करना पर्याप्त नहीं है क्योंकि अधिष्ठायी नियम ऐसे सभी दस्तावेज जो अंग्रेजी भाषा में नहीं हैं, को अंग्रेजी भाषा में अनुवाद की टंकित प्रतियां प्रस्तुत करने की अनुज्ञा देता है । याचिका से संलग्न सभी दस्तावेजों का अनिवार्यतः अंग्रेजी भाषा में होना आवश्यक है और अंग्रेजी भाषा से भिन्न भाषा में दस्तावेज फाइल किए जा सकते हैं बशर्ते उनके अनुवाद प्रस्तुत किए गए हों । विनायक वाले मामले के विनिश्चय में इस तथ्य पर ध्यान दिया गया है कि नादगौड़ा वाला मामला ए. एस. नियम के अध्याय 17 के नियम 2(i) को संविधान के अनुच्छेद 348(1) का अधिकारातीत घोषित नहीं करता किन्तु इस अनुच्छेद का अधिकारातीत घोषित करते हुए परन्तुक को केवल अभिखंडित करता है । एक बार अकेले परन्तुक न कि अधिष्ठायी नियम को अधिकारातीत घोषित किए जाने पर निकाले गए निष्कर्ष को कायम नहीं रखा जा सकता ।'

7. यहां उपरोक्त निर्दिष्ट बम्बई उच्च न्यायालय के तर्क को लागू करते हुए यह न्यायालय उपरोक्त उद्धृत विनिश्चयाधार से पूर्णतः सहमत है, अतः उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार कार्यालय के आक्षेपों को उलटा जाता है उसके द्वारा यह हिन्दी में उपाबंधों वाली रिट याचिकाओं को स्वीकार न करने का प्रस्ताव किया है ।

प्रबन्ध समिति कन्या विद्यालय, किसरोली और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (तारीख 17 दिसम्बर, 2012 इलाहाबाद उच्च न्यायालय) ।"

71. पूर्वोक्त अग्रता के दिग्दर्शन में, मैं 2010 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 83 में प्रकाशित इसी मामले में खंड न्यायपीठ निर्णय जिससे यह प्रतिनिर्देश उद्भूत हुआ, के साथ **स्वर्ण सिंह बग्गा** बनाम **एन. एन. सिंह, रजिस्ट्रार**[1] और **बिनय कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य बिजली**

[1] 2003 (1) पी. एल. जे. आर. 315.

बोर्ड और अन्य[1] वाले मामलों के निर्णयों को अब निर्दिष्ट करता हूं ।

72. उक्त निर्णयों के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि **स्वर्ण सिंह बग्गा** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्णय में तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का निर्वचन करने की कार्यवाही करते समय उचित ही यह निष्कर्ष निकाला गया है कि 'इसी प्रकार = इसी तरह = समान रूप से' पद का यह अर्थ निकालने के लिए 'केवल = मात्र' शब्द के साथ जोड़कर उचित ही अर्थान्वयन निकाला गया है कि अधिसूचना भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाओं और कर निर्देशों की बाबत स्पष्ट अपवाद के साथ इसका लागू होना सुस्पष्ट है । मैं इससे असहमत होने का कोई कारण नहीं पाता हूं क्योंकि निर्वचन का स्वर्णिम नियम यह है कि उस प्रयोजन जिसके लिए यह विरचित किया गया है इसके शाब्दिक प्रतिपादन के साथ कानूनी उपबंध का पढ़ा जाना है । मेरी राय में, हिन्दी को इन तीन प्रवर्गों अर्थात् भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका और कर निर्देशों की बाबत अनुकल्पी भाषा के रूप में उपबंध नहीं किया गया है । तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में प्रयुक्त शब्दों को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि शासकीय प्रयोग के लिए पेश किए जाने वाले ऐसे अभिवचन अनिवार्यतः उक्त अधिसूचना के अनुसार अंग्रेजी में होना चाहिए और जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय के नियमों से होती है ।

73. मेरी विचारित राय में, यह अर्थ निकालना उचित नहीं होगा कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में देवनागरी लिपि में हिन्दी का प्रयोग करने का प्रतिषेध नहीं है । अधिसूचना में केवल यह उल्लेख नहीं है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाएं और कर प्रतिनिर्देश 'केवल' अंग्रेजी में प्रस्तुत किया जाएगा । यह व्यक्ततः अंग्रेजी का अपवर्जन करते हुए हिन्दी के प्रयोग का प्रतिषेध नहीं करता । वादकारी हिन्दी में अपना अभिवचन प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र है किन्तु इसका प्राधिकृत पाठ सूचना में उपबंध के विस्तार तक अंग्रेजी में होना चाहिए । यह प्रक्रिया का विषय है जहां वैसी ही

[1] 2003 (2) बिहार ला जर्नल 419.

अधिसूचना **मधु लिमये** (पूर्वोक्त) वाले मामले के अनुसार हिन्दी में दिए गए मौखिक बहस को निवारित नहीं करती ।

74. यहां प्रश्न किसी भाषा की संप्रभुता के विरोध का नहीं है बल्कि लिखित याचिकाओं के कतिपय वर्गों में न्यायालय की भाषा के प्रयोग के रूप में इसकी व्यवहार्यता और प्रयोजन से है । इस दृष्टिकोण से, संवैधानिक अधिदेश का हमेशा राजभाषा के रूप में हिन्दी को मानने का निर्वचन किया जाता है । न्यायालय कार्यवाहियों के लिए व्यवहार्यतः हिन्दी समानांतर भाषा है और पटना उच्च न्यायालय में बोली भी जाती है । हिन्दी में मौखिक निवेदन करने की कोई कानूनी या संवैधानिक रोक नहीं हैं । इस प्रकार, हिन्दी कोई अनुकल्पी भाषा नहीं है बल्कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में अन्तर्विष्ट सीमा के अधीन रहते हुए न्यायालय कार्यवाहियों में प्रयोगकर्ता के विशेषाधिकार पर चयनित विकल्प के रूप में उपलब्ध भाषा है । परिसीमा का यह आदेश वर्ष 1972 का है और लगभग अर्धशताब्दी से अधिक समय के पश्चात् यह अंग्रेजी में रिट याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों को प्रस्तुत करने में अंग्रेजी के प्रयोग के साथ न्यायालय कार्यवाहियों में किसी व्यवहारिक असुविधा के बिना बाधा पैदा करता है । यह वांछा कि हिन्दी को ऐसे प्रयोग से उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, एक चिन्ता का विषय हो सकता है किन्तु यहां दो पहलुओं पर स्पष्टतः विचार किया जाना चाहिए । पहला विधि के छात्रों के लिए यथाविहित शिक्षा का माध्यम है । मैंने पहले ही भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम की दूसरी अनुसूची को निर्दिष्ट किया है जिसमें यह उपबंध हैं कि विधि विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रमों की बाबत शिक्षा का माध्यम अनन्यतः अंग्रेजी होनी चाहिए । अतः, यह स्पष्टतः आधार प्रदान करता है कि प्राथमिकतः अंग्रेजी भाषा का प्रयोग न केवल इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के कारण बल्कि आज के संदर्भ में अंग्रेजी भाषा के वैश्विक प्रभाव के कारण भी विधि का ज्ञान लेने वाले लोगों का प्रशिक्षण देने के लिए किया जा रहा है, जब सम्पूर्ण विश्व की विधियां अन्तरराष्ट्रीय विधि, वाणिज्यिक विधि सहित पाठ्यक्रमों में निर्दिष्ट की जा रही हैं और हिन्दी देवनागरी लिपि में इस व्यापक वैश्विक जानकारी का अनुवाद निकट भविष्य में संभव नहीं हो

सकता न ही ऐसा प्रभावी अनुवाद इस विस्तार तक उपलब्ध है जैसा हिन्दी देवनागरी लिपि में विधि की जानकारी लेने वाले लोगों के प्रशिक्षण के लिए अपेक्षित है । अंग्रेजी के विधान, संविदा के दस्तावेज, सेवा-नियम, प्राण और दैहिक स्वतंत्रता तथा नियोजन से संबंधित विधि, पर्यावरण से संबंधित विधि और इसी तरह के पाठ्यक्रम के व्यापक क्षेत्र को शैक्षिक संस्थाओं या न्यायालयों में भी उपयोग के लिए सटीक रूप से रातों रात अनुवाद नहीं किया जा सकता । अतः, इसका अभिवचनों विशेषकर रिट याचिकाओं के प्रारूपण पर सीधा प्रभाव होगा जो सभी न्यायालयों में भारी मात्रा में प्रस्तुत होते हैं । अतः, हिन्दी में शिक्षा के माध्यम के आदेश भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम में सावधानीपूर्वक सम्मिलित किया गया प्रतीत होता है जिसकी हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए उपेक्षा नहीं की जा सकती जो निश्चित रूप से पूरी की जाने वाली संवैधानिक आकांक्षाओं में से एक है ।

75. दूसरा कारण यह है कि हमारे देश में भिन्न-भिन्न भाषाएं हैं और आज के संदर्भ में अधिवक्ता सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायालयों को संबोधित करने और उनकी सहायता करने के लिए दूर-दूर तक यात्रा करते हैं जो अनिवार्यतः अंग्रेजी भाषा में आजकल अभिव्यक्ति का माध्यम है । अतः, वे वादकारियों की समस्याओं की अधिक सुविधाजनक रूप से अभिव्यक्ति अंग्रेजी भाषा में याचिकाओं का अभिवचन और प्रस्तुतिकरण भी कर सकती है । ऐसे राज्य में मामले में फंसने की ऐसे वादकारी की संभावना है जहां भाषा पूर्णतः भिन्न है अतः, यह न केवल वादकारी के लिए बल्कि अधिवक्ता और न्यायालय के लिए भी भिन्न बनाता है । यदि याचिकाओं के प्रतिलेखन के समय हिन्दी भाषा के प्रयोग पर अधिक जोर दिया जाता है किन्तु वहीं यदि याचिकाएं हिन्दी देवनागरी लिपि में फाइल की जाती है और जिसपर न्यायालय द्वारा विचार किया जाना हो तो इसके लिए उसके अनुवाद की अपेक्षा होगी तो उस सीमा तक यह उपबंध किया जा सकता है कि किसी याचिका या कर प्रतिनिर्देश को हिन्दी में पेश किए जाने की दशा में इसके साथ अंग्रेजी भाषा में इसका प्राधिकृत पाठ भी संलग्न होना चाहिए क्योंकि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना के अनुसार वह शासकीय मान्यताप्राप्त भाषा होगी ।

76. **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा किए गए निर्णय के अनुसार, अधिसूचना न तो असंवैधानिक है और न ही इस न्यायालय द्वारा पढ़े जाने के कारण किसी खामी से ग्रस्त होना कहा जा सकता है । न तो वादकारी या किसी अधिवक्ता के किसी विधिक अधिकार का अतिलंघन होता है न ही मूल अधिकार का कोई अतिलंघन होता है जो हमेशा संविधान के अधीन अनुज्ञेय युक्तियुक्त निर्बंधनों के अधीन हैं । आक्षेपित अधिसूचना अभी भी विधि की उक्त परिधि के भीतर है । वादकारी या अधिवक्ता इस न्यायालय के समक्ष न्यायिक पुनर्विलोकन का अपना अधिकार नहीं खोते जो किसी भी रीति में जोखिमग्रस्त नहीं है और यदि कतई कोई वादकारी अपनी शिकायत करने के लिए किसी विशिष्ट भाषा के प्रयोग से उद्भूत ऐसी किसी समस्या की ईप्सा करता है तो किसी वादकारी को ऐसी सहायता के लिए स्वयं उच्च न्यायालय की कानूनी सहायता सेवा प्राधिकरण की उसकी शाखा के साथ इसका पूर्ण तंत्र है ।

77. एक अन्य आयाम जो सम्पूर्ण देश के अधीनस्थ न्यायालयों या उच्चतर न्यायपालिका में न्याय प्रशासन के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण कारक है विधि के स्रोत अर्थात् पूर्व निर्णयों के रूप में उपलब्ध भारी संख्या में ऐसी सामग्री की विद्यमानता है । भारत में सर्वोत्तम विधि पत्रिकाएं जो पहले और आजकल प्रकाशित हो रही हैं, सभी अंग्रेजी में हैं । विख्यात लेखकों या विधिशास्त्र के विद्वानों द्वारा विधि की लगभग सभी शाखाओं के प्राधिकृत पाठ सभी अंग्रेजी में हैं । इस न्यायालय के लिए यह पूर्वघोषित करना संभव नहीं होगा कि कब और कैसे यह सम्पूर्ण सामग्री ऐसे लोग जो अभिवचन में हिन्दी भाषा के आरम्भ के लिए आंदोलन कर रहे हैं, और जो सामान्यतः और काफी हद तक अधिवक्ताओं और विधि विशेषज्ञों द्वारा न कि व्यक्तियों द्वारा प्रारूपण किया जाता है, के उपयोग और समझ के लिए हिन्दी देवनागरी लिपि में अनुवादित हो पाएगी । इस समय, पूर्व-निर्णय के रूप में विधि का काफी स्रोत भी चिन्ताजनक विषयों में से एक है क्योंकि यह विधिक शिक्षा और सतत् विधिक शिक्षा दोनों का सारवान् आधार गठित करता है ।

78. इस प्रकार, न्याय की प्राप्ति हेतु अंग्रेजी की सामग्री के उपयोग

को रातों रात प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता जो उन लोगों के लिए व्यापक चिंता का विषय होना चाहिए जो सम्पूर्ण देश में न्यायपालिका के सभी स्तरों पर हिन्दी के प्रयोग के संवैधानिक निर्देश के प्रवर्तन की ईप्सा करते हैं । अतः, यह मुद्दा राष्ट्र के हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह, विशेषकर न्याय प्रशासन के मामले में सम्पूर्ण राष्ट्र को समाविष्ट करता है । किसी भी व्यक्ति को नहीं भूलना चाहिए यह राष्ट्र ऐसे डिजाइन में बुना हुआ एक सुन्दर गलीचे की तरह है जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र को एक ऐसे धागे में कड़ाई से बांधकर बुने गए भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक निरूपण की भाषाएं हैं । इसलिए, न्यायपालिका के शासकीय विषयों में हिन्दी देवनागरी लिपि के प्रयोग को न्यायोचित ठहराने के लिए राष्ट्र के एकीकृत मूलभूत दर्शन को उसी दक्षता के साथ मिश्रित किया जाना चाहिए जिस तरह अधिरोपण की भावना के बिना राष्ट्र को एकीकृत रखा गया था किन्तु, वहीं राष्ट्रीय एकीकृत सांस्कृतिक समाज के संवैधानिक लक्ष्य के प्रति उचित ईमानदारीपूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए । मेरी राय में, यह एकीकृत राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा को विक्षत किए बिना न्याय के सामान्य प्रशासन के उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा । हिन्दी या अंग्रेजी को अकेली भाषा के रूप में समझना संवैधानिक अधिदेश होना प्रतीत नहीं होता और यह इस मत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 348 को गढ़ा और आकार दिया । परिसंघ ढांचे का संरक्षण जो हमारी लोकतांत्रित व्यवस्था का आवश्यक भाग है और परिसंघवाद हमारे संविधान का मूलभूत ढांचा है । अनुच्छेद 348 को भी राजभाषा के रूप में राष्ट्र में हिन्दी भाषा के प्रचार के उद्देश्य के समर्थन में बनाया गया था जो उपरोक्त की गई चर्चा के अनुसार, संविधान में अन्तर्विष्ट आदेशों के रूप में रूपायित है । अतः, उठाया गया उद्देश्य प्रशंसनीय है किन्तु उद्देश्य की न्याय क्षमता स्वयं संवैधानिक उपबंधों द्वारा सीमित है । बदलते सामान्य आवश्यकताओं और संविधान में अनुष्ठापित आदर्शों को सार्थक बनाने और हिन्दी में याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों को ग्रहण करने की प्रथा को लागू करने के दृष्टिकोण को वास्तविक स्वरूप प्रदान करना भी संभव और आवश्यक है । पहले हमारे द्वारा यह उल्लेख किया गया है कि न्यायालय द्वारा कार्यपालिका को

बुलाकर कार्यपालिका या विधायी हस्तक्षेप के माध्यम से मुद्दे को उठाने और सुलझाने का प्रयास किया गया किन्तु राज्य की ओर से प्रति शपथ-पत्र में ऐसी किसी इच्छा की अभिव्यक्ति प्रतीत नहीं होती । अतः, मैंने अपने विचार को इस विस्तार तक सीमित रखा जो, मेरी राय में, संवैधानिक सीमाओं के भीतर अनुज्ञेय है और जहां तक इस मुद्दे की क्षितिज को कुछ समय के लिए दृष्टिगत किया जा सकता है । अतः, विधायिका द्वारा विहित विधि से परे इस उद्देश्य के संवर्धकों की इच्छाओं को पूरा करने के लिए इस विषय को इस प्रक्रम पर विराम देना होगा जब तक तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना यथावत् बनी रहती है । अतः, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना विधिमान्य है और इसके सिवाय कोई अन्य अर्थ निकाला जाना संभव नहीं है जो इसमें वर्णित है और न ही विधि में क्या होना चाहिए के आधार पर निर्वचन के यंत्र द्वारा पढ़ा जा सकता है । न्यायालय का कार्य यह परिभाषित करना है कि विधि क्या है और यह विधायिका या कार्यपालिका का कर्तव्य है कि वे किसी व्यक्त उपबंध को उपांतरित करें क्योंकि यह लोप होने का विषय नहीं है जिसे न्यायिक निर्वचन द्वारा पूरा किया जा सके ।

79. ऐसा कहने और सम्पूर्ण पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए, जब यह अधिसूचना का निर्वचन किया जाता है तो मैं अधिसूचना को रद्द करने की कोई विधायी इच्छा नहीं पाता किन्तु वहीं आकांक्षाएं भी पूरी की जानी चाहिए और संवैधानिक निदेश को एक दिशा दी जानी चाहिए । अतः, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 348(2) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई अधिसूचना किसी खामी से ग्रस्त नहीं है । अतः, **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्णय की शुद्धता को इस पूर्ण न्यायपीठ द्वारा उत्तर के लिए उचित ही निर्दिष्ट किया गया है और उस विस्तार तक हम तारीख 1 मई, 2015 के निर्देश करने वाले आदेश में विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त मत से सहमत पाते हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन पेश की जाने वाली याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों की बाबत अपवाद डालते हुए निकाले गए अन्तर को

बिनय कुमार सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए कारण के आधार पर हटाया नहीं जा सकता । अतः, मैं **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले या इसी तरह के मामलों में दी गई तर्कणा को अनुमोदित नहीं करता और उस विस्तार तक मैं यह निष्कर्ष निकालता हूं कि **स्वर्ण सिंह बग्गा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में व्यक्त मत सही मत है किन्तु वहीं उपरोक्त की गई चर्चाओं के आलोक में मैं यह उपबंध करना आवश्यक समझता हूं कि जब तक तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना को किसी रूप में उपांतरित, अभिखंडित या प्रतिस्थापित नहीं किया जाता है तब तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिका या कर प्रतिनिर्देश को हिन्दी में फाइल किया जा सकता है किन्तु इसके साथ अंग्रेजी पाठ भी संलग्न करना होगा जो सभी विधिक प्रयोजनों के लिए याचिका का अधिप्रमाणिक पाठ होगा जब तक अधिसूचना तारीख 9 मई, 1972 लागू रहती है ।

80. प्रतिनिर्देश का तद्नुसार उत्तर दिया गया ।

(अमरेश्वर प्रताप साही)
मुख्य न्यायमूर्ति

न्यायमूर्ति आशुतोष कुमार के अनुसार :

81. प्रतिनिर्देश के अधीन मुद्दा यह है कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में फाइल की जा सकती है ।

82. इस न्यायपीठ के लिए पूर्वोक्त प्रश्न के विनिश्चय का अवसर तब मिला जब **बिनय कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक अन्य खंड न्यायपीठ के निर्णय से इस मामले में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ असहमत हुआ जिसमें और जिसके द्वारा इसी मामले अर्थात् **बिनय कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विद्वान्

[1] 2010 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 83.

[2] 2003 (2) बिहार ला जर्नल 419.

एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका पटना उच्च न्यायालय में केवल अंग्रेजी भाषा में फाइल की जा सकती है, अपास्त किया गया ।

83. मतभेद का कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 348(2) और राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 के अधीन उपबंधों का अवलंब लेकर बिहार के माननीय राज्यपाल द्वारा जारी तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में प्रयुक्त पदावली/भाषा है जो पटना उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल और दांडिक मामलों में बहस करने और याचिका के ज्ञापन के साथ शपथ-पत्र पेश करने तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों के लिए अपवाद विहित करने की बाबत हिन्दी भाषा का प्रयोग विकल्प के रूप में उपबंधित करता है ।

84. **कृष्णा यादव** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ ने पूर्ण न्यायपीठ को मामला निर्दिष्ट करते हुए, यह राय व्यक्त की कि यह अपवाद जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिकाओं की बाबत विहित किया गया है, की तुलना कर प्रतिनिर्देशों से की गई है जिसे केवल अंग्रेजी भाषा में किया जाता है ।

85. पूर्वोक्त मतभिन्नता/विरोध को सुलझाने के लिए मंत्रिमंडल (राजभाषा) सचिवालय द्वारा तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना को दोहराना आवश्यक है :

मंत्रिमंडल (राजभाषा) सचिवालय

अधिसूचना

9 मई, 1972

सं. 31 हि 3-5043168........185 रा. संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (2) एवं आफिसियल लैंग्वेजज़ ऐक्ट, 1963 (अधिनियम 19, 1963) की धारा 7 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बिहार राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उच्च न्यायालय में निम्नांकित कार्यवाहियों के लिए हिन्दी भाषा का वैकल्पिक प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत करते हैं :–

(1) पटना उच्च न्यायालय के समक्ष दीवानी तथा फौजदारी मामलों में बहस करने के लिए ।

(2) शपथ-पत्रों सहित आवेदन प्रस्तुत करने के लिए :

किन्तु अपवाद स्वरूप भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन प्रस्तुत किए जाने वाले आवेदनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा । आवेदनों से संलग्न अनुबंध का अंग्रेजी में होना आवश्यक नहीं होगा । इसी प्रकार कर निर्देश (टैक्स रेफरेसेज) से संबंधित आवेदन भी केवल अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाते रहेंगे । खास-खास मामलों में, पटना उच्च न्यायालय हिन्दी के कागजात का अंग्रेजी में अनुवाद कराने का आदेश दे सकेगा ।

(3) पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए जाने वाले किसी निर्णय, बिक्री या आदेश के लिए किन्तु जहां कोई निर्णय बिक्री या आदेश हिन्दी में पारित किया या दिया जाएगा, वहां पटना उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी अनुवाद साथ में दिया जाएगा ।

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया)

86. तथापि, यह उल्लेखनीय है कि जब पूर्ण पीठ निर्देश की सुनवाई करने के लिए उपस्थित हुई तो आरम्भतः यह पाया गया कि यह अधिक उचित होगा यदि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना पर संविधान के सामान्य अधिदेश और बिहार राज्य के हिन्दीभाषी राज्य होने को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार द्वारा पूर्वोक्त अधिसूचना में आवश्यक परिवर्तन लाने के बारे में चाहे यह दूसरी अधिसूचना के माध्यम से ही हो, पुनर्विचार किया जाए ।

87. चूंकि राज्य सरकार से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ अतः निर्देश का तद्नुसार उत्तर दिया जा रहा है ।

88. भारत के संविधान का भाग 17, अध्याय 3 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों आदि की भाषा के बारे में हैं । भारत के संविधान का अनुच्छेद 348 इस प्रकार है :–

"348. **उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा –**

(1) इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक –

(क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी,

(ख) ....

(i) संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुरःस्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,

(ii) संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

(iii) इस संविधान के अधीन अथवा संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन निकाले गए या बनाए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के,

प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे ।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिन्दी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा :

परन्तु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी ।

(3) खंड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने, उस विधान-मंडल में पुरःस्थापित विधेयकों में या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड के पैरा (iii) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां उस राज्य के राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया)

89. उपरोक्त अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 348(2) के आधार पर, राज्य के राज्यपाल को भारत के राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से राज्य में उच्च न्यायालय की मुख्य पीठ की कार्यवाहियों में हिन्दी भाषा के प्रयोग की सिफारिश करने/प्राधिकृत करने का प्राधिकार है ।

90. राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 इस प्रकार है :-

"धारा 7. **उच्च न्यायालय के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग** – नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।"

91. पटना उच्च न्यायालय नियम के भाग 2, अध्याय 3, अनुच्छेद 1/नियम 1 के उपबंध की परीक्षा करना आवश्यक है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख है कि "उच्च न्यायालय को प्रत्येक आवेदन अंग्रेजी भाषा में लिखित आवेदन द्वारा किया जाएगा ।"

92. उपरोक्त उल्लेखानुसार, **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के खंड न्यायपीठ निर्णय से भिन्न मत व्यक्त करते हुए, **कृष्णा यादव** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्‌वारा बृहत्तर न्यायपीठ को मामला निर्दिष्ट करने का केवल एक ही कारण है जो पटना उच्च न्यायालय में सिविल और दांडिक मामलों में बहस के लिए और शपथ-पत्रों के साथ आवेदनों की वैकल्पिक भाषा के रूप में हिन्दी का उपबंध करने वाली अधिसूचना में अपवाद विहित करने की भाषा से संबंधित हैं । उपरोक्त निर्दिष्ट अधिसूचना में उपबंधित अपवाद का शाब्दिक अनुवाद यह है कि अपवाद के रूप में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिका अंग्रेजी भाषा में फाइल की जाती रहेगी किन्तु ऐसी याचिका के संलग्नकों का हिन्दी में होना आवश्यक नहीं है । इसके पश्चात्, इसमें यह उल्लेख है कि 'इसी प्रकार' कर प्रतिनिर्देशों को केवल अंग्रेजी में फाइल किया जाएगा । अतः, **कृष्णा यादव** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्‌वारा यह निर्वचन किया गया कि कर प्रतिनिर्देशों के संदर्भ में 'इसी प्रकार' शब्द के अंतःस्थापन, जिसे अनिवार्यतः अंग्रेजी भाषा में ही किया जाना है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाएं भी केवल अंग्रेजी भाषा में फाइल की जाएंगी या अन्यथा 'इसी प्रकार' शब्द के प्रयोग वाले अपवाद की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

93. **कृष्णा यादव** (पूर्वोक्त) वाले मामले की पीठ की राय में, पूर्वोक्त पहलू पर **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के खंड न्यायपीठ द्‌वारा ध्यान नहीं दिया गया ।

94. अतः, मामले का निर्देश किया गया ।

95. यह भी उल्लेखनीय है कि **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में विद्‌वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय, जो खंड न्यायपीठ द्‌वारा उलट दिया गया था, में भारत के संविधान के अनुच्छेद 350 और 351 के उपबंधों पर ध्यान दिया गया जो प्रत्येक व्यक्ति को किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने की अनुज्ञा देने और भारत संघ के इस बाध्यता के अधीन

की वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए और उसका विकास करे जिससे कि वह भारत के सम्मिश्रत संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृति से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे, विशेष निदेश की प्रकृति के हैं । किन्तु, साधारण कथन विशेष कथन का अल्पीकरण नहीं करते और साधारण कथन विशेष कथन का अल्पीकरण करते हैं, के अनुपालन में यह अभिनिर्धारित किया कि यदि किसी कतिपय मामले की बाबत विशेष उपबंध किया गया हो तो विषय को साधारण उपबंधों से अपवर्जित किया जाता है । अतः, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों की बाबत अपवाद को उसी धरातल पर रखा गया और उसी प्रवर्ग में देखा गया जहां केवल अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जा सकता है ।

96. अपील में, खंड न्यायपीठ का यह मत था कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रश्नगत अधिसूचना (तारीख 9 मई, 1972) के शाब्दिक प्रश्न के आधार पर कार्यवाही आरम्भ की और यदि इसे इसकी समग्रता में पढ़ा गया होता तो केवल यह ही निष्कर्ष निकाला गया होता कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिका अंग्रेजी भाषा में भी फाइल की जा सकती है । अधिसूचना की ऐसी व्याख्या तभी अधिसूचना की भावना के अनुकूल होगी जब शपथ-पत्रों द्वारा समर्थित आवेदनों को पेश करने में हिन्दी के वैकल्पिक भाषा और सिविल तथा दांडिक मामलों में बहस करने में हिन्दी भाषा के प्रयोग का उपबंध किया जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश के मत से असहमत होने का खंड न्यायपीठ का अन्य कारण यह था कि परन्तुक (अपवाद) अधिसूचना के खंड i और ii के अधिष्ठायी उपबंध को नियंत्रित नहीं करेगा । यदि माननीय राज्यपाल का यह आशय रहा होता कि उच्च न्यायालय में फाइल की जाने वाली रिट याचिकाएं केवल अंग्रेजी भाषा में ही अनुज्ञेय होंगी तो अधिसूचना में इसे स्पष्ट किया गया होता जैसा कि

यह कर प्रतिनिर्देशों में केवल अंग्रेजी भाषा के प्रयोग की बाबत स्पष्ट किया गया है ।

97. विलोमतः, **कृष्णा यादव** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ ने अपवाद के रूप में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाओं और कर प्रतिनिर्देशों को लाते हुए 'इसी प्रकार' शब्द के प्रयोग पर बल दिया जहां केवल अंग्रेजी भाषा का प्रयोग अनुज्ञेय है ।

98. कर प्रतिनिर्देशों जिसके लिए केवल अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाना है, को निर्दिष्ट करते हुए 'इसी प्रकार' शब्द के प्रयोग के कारण मामले में कुछ संदिग्धता प्रतीत होती है किन्तु हमारी राय में, 'इसी प्रकार' शब्द का प्रयोग अनावश्यक प्रतीत होता है ।

99. यदि अधिसूचना को समग्रता में पढ़ा जाए, तो निश्चित ही यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 348(2) के निबंधनानुसार भारत के संविधान के अनुच्छेद 350 और 351 के निर्देशों की भावना के अनुप्रमाणन और अनुपालन में वैकल्पिक भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग की अनुज्ञा देने की आवश्यकता को प्रतिबिम्बित करता है । यदि अधिसूचना को इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो इसके दो अपवाद अर्थात् भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका और कर प्रतिनिर्देश को स्वीकार करते हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिकाओं के लिए अधिसूचना की भाषा यह है कि हिन्दी भाषा में भी उन याचिकाओं को पेश करने के वादकारी/अधिवक्ता को मौन विकल्प देते हुए, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा । कर प्रतिनिर्देशों की बाबत, अधिसूचना में स्पष्टतः यह उल्लेख है कि वे केवल अंग्रेजी भाषा में ही किए जाएंगे । माध्यम के रूप में हिन्दी भाषा के प्रयोग का ऐसा अभिनिषेधन, जैसा कर प्रतिनिर्देशों के लिए विहित किया गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिकाओं की बाबत सुस्पष्टतः विद्यमान नहीं हैं ।

100. अतः, मैं 'इसी प्रकार' शब्द के प्रयोग के कारण कर प्रतिनिर्देशों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट

याचिकाओं के समान मानने के बजाय कर प्रतिनिर्देशों में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग की बाबत 'केवल' शब्द के प्रयोग पर अधिक बल देना चाहता हूं ।

101. पूर्वोक्त निर्वचन के पक्ष का पक्षधर होते हुए, मैंने भारत के संविधान के अनुच्छेद 350 और 351 के उपबंधों और जन साधारण विशेषकर बिहार राज्य की भाषा हिन्दी होने पर गहनतापूर्वक विचार किया ।

102. इस प्रकार, निर्देश का उत्तर यह है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका हिन्दी भाषा में भी फाइल की जा सकती है ।

103. विषयान्तर के रूप में, मैं स्वयं को याद दिलाना उचित समझता हूं कि भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करने वाले लोगों के बीच भाषा की प्रमुखता झगड़े की जड़ रही है और यह देखा जाता है कि एक भाषा का कभी-कभी दूसरी भाषा पर प्रमुखता अभिप्राप्त करने के कारण निर्देश किए जाते हैं और अनिवार्यतः अन्य भाषाओं द्वारा प्रभावित होते हैं । दृष्टांत के रूप में, इंग्लैण्ड के सैक्सन आक्रमणकारियों ने यद्यपि लैटिन भाषा के सभी प्रभाव को हटाने का प्रयास किया किन्तु अंग्रेजी भाषा अछूती नहीं रह सकी । अंग्रेजी भाषा पर गौल (फ्रेंच भाषा की पूर्ववर्ती) नामक नई भाषा का प्रभाव था । तथापि, जैसा कि अनुभवाश्रित अध्ययन से यह पता चलता है कि अंततः वरिष्ठ लोगों की भाषा के स्थान पर लोगों की भाषा प्रभावी हो जाती है । वर्तमान परिदृश्य में, शिक्षा के विकास और वैश्वीकरण के प्रभाव से यह मुश्किल से कहा जा सकता है कि अंग्रेजी आम लोगों के लिए बोधगम्य नहीं है किन्तु इस मताभिव्यक्ति को समाज की वास्तविक स्थिति से हीन एकांत की मताभिव्यक्ति होते हुए लगातार पराजय मिलती रही है ।

104. तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि निर्देश का उत्तर विशुद्धतः संवैधानिकता के मुद्दे पर दिया जा रहा है और कुछ नहीं ।

(आशुतोष कुमार)
न्यायाधीश

न्यायमूर्ति राजीव रंजन प्रसाद के अनुसार :-

105. मुझे मेरे भ्राता न्यायमूर्ति आशुतोष कुमार के पांडित्यपूर्ण और

सुस्पष्ट व्यक्त निर्णय का परिशीलन करने का अवसर प्राप्त हुआ । भ्राता न्यायमूर्ति आशुतोष ने निर्देश का उत्तर देते हुए यह मत व्यक्त किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका पटना उच्च न्यायालय में हिन्दी भाषा में भी फाइल की जा सकती है ।

106. ससम्मान, मुझे इसके पश्चात् कथित कारणों से पूर्वोक्त मत से सहमत होने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए खेद हो रहा है ।

107. वर्तमान मामले में, हम भारत के माननीय राष्ट्रपति के पूर्व अनुमोदन से राजभाषा अधिनियम, 1963 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 1963 का अधिनियम कहा गया है) की धारा 7 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (2) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए बिहार के महामहिम माननीय राज्यपाल द्वारा जारी तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का निर्वचन कर रहे हैं । पूर्वोक्त अधिसूचना का निर्वचन करने के पूर्व, मैं संक्षेप में संविधान सभा की भाषा की बहस को निर्दिष्ट करना चाहता हूं । मैं चल रही बहस के प्रति भी सचेत हूं कि यदि भारत का एक राष्ट्रगीत और एक राष्ट्रीय झंडा है तो एक राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं हो सकती, किन्तु ऐसा कहते हुए हमें इस विचार को भी ध्यान में रखना होगा कि भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है क्योंकि लगभग 1600 भाषाएं और बोलियां इस देश में फल-फूल रही हैं ।

108. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हिन्दी के प्रस्तावकों में से एक थे । संविधान सभा प्रकटतः इस पर विभाजित थी कि इस भाषा को एक राष्ट्रीय भाषा माना जाए । संविधान सभा बहस जो तारीख 14 सितम्बर, 1949 को हुई, में संविधान सभा के सदस्यों ने संघ की शासकीय भाषा के बारे में चर्चा की । भारत के संविधान का अनुच्छेद 343 वह है जो प्रारूप संविधान में संघ की भाषा के शीर्ष के अधीन भाग 14क, अध्याय 1 में अनुच्छेद 301क था । इसी प्रकार, अनुच्छेद 344, 345, 346 और 347 प्रारूप संविधान के क्रमश: अनुच्छेद 301ख, 301ग, 301घ और 301ङ थे । प्रारूप संविधान में भाग 14क के अधीन आने वाला अध्याय 3 वह था जो भारत के संविधान के भाग 17 के अधीन अध्याय 3 है । अध्याय 4 में विशेष निदेश अन्तर्विष्ट हैं । अनुच्छेद 301झ वह था जो भारत के संविधान में अनुच्छेद 351 है ।

109. ऐसी एकता जो संविधान सभा में विद्यमान थी, भाषायी बहस के दौरान टूटने के कगार पर थी ।

110. काफी बहस और विचार-विमर्श के पश्चात्, मुंशी-आयंगर फार्मूला विसम्मति के बिना स्वीकार किया गया । इस फार्मूला के अनुसार, अंग्रेजी 15 वर्षों की अवधि के लिए हिन्दी के साथ भारत की शासकीय भाषा बनी रहेगी । इस प्रकार, भारत के संविधान की अनुसूची 8 मुंशी-आयंगर फार्मूला का परिणाम है । वर्ष 1963 में, राजभाषा अधिनियम को अहिन्दी भाषीयों को संतुष्ट करने के अलावा एक और अन्य कारण से अधिनियमित किया गया । राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 तारीख 7 मार्च, 1979 को प्रवृत्त हुई (भारत का राजपत्र, तारीख 7 मार्च, 1979, पी-II, एस.-3(ii), पी-1195 देखें) । धारा 7 के आधार पर राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व-सम्मति से अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहीं उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा । बिहार राज्य ने भी 'बिहार विधि भाषा अधिनियम, 1955' का अधिनियमन किया है । यह भारत के राष्ट्रपति की सहमति से प्रकाशित किया गया है । 1955 के अधिनियम की धारा 2 इस प्रकार है :-

> *"धारा 2. **विधेयकों आदि में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा** – (क) राज्य की विधायिका के किसी सदन में लाए जाने के लिए पुरःस्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों और संशोधनों ;

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :-

> "2. **Language to be used in Bills Ete** – (a) The Language to be use in @ all bills to be introduced or amendments there to be moved in either House of the Legislature of the State;

(ख) राज्य विधायिका द्वारा पारित सभी अधिनियमों ;

(ग) संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन प्रख्यापित सभी अध्यादेशों ; और संविधान के प्रारम्भ के पहले या पश्चात् बनाई गई किसी विधि के अधीन या संविधान के अधीन सरकार के आदेशों में प्रयोग की जाने वाली भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी :

परन्तु खंड (क) के प्रारम्भ के पूर्व पुरःस्थापित किए गए विधेयक राज्य विधायिका द्वारा अंग्रेजी भाषा में अधिनियमों के रूप में पारित किए जा सकते हैं ।"

111. भारत के संविधान के अनुच्छेद 348 को मेरे भ्राता न्यायमूर्ति आशुतोष द्वारा दोहराया गया है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 348(1)(क) के परिशीलन के पश्चात् यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय की सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी में होंगी, तथापि, खंड (2) राज्यपाल को उच्च न्यायालय में अभिवचनों या बहसों और फाइल किए गए दस्तावेजों में हिन्दी के प्रयोग की अनुज्ञा देने की शक्ति प्रदान करता है ।

112. **मधु लिमये** बनाम **देवमूर्ति**[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय के माननीय सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यद्यपि आरम्भतः श्री राजनारायण को हिन्दी में संबोधित करने की अनुज्ञा दी थी किन्तु जब यह ध्यान में लाया गया कि विद्वान् महान्यायवादी और

(b) All Acts passed by the State Legislature;

(c) All ordinances promulgated under Article 213 of the Constitution; and government under the Constitution or under any law made before or after the commencement of the Constitution; shall be Hindi in 'Devangari' script :

Provided that Bills introduced prior to the commencement of clause (a) may be passed as Acts by the State Legislature in the English language."

[1] (1973) एस. सी. सी. 738 = ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2608.

पीठ के कुछ सदस्य हिन्दी की बहस नहीं समझ सके तो माननीय पीठ ने अगले दिन श्री राजनारायण को हिन्दी में सुनने पर सहमत नहीं हुए और उन्हें या तो अंग्रेजी में तर्क करने या वे अपना मामला पेश करने के लिए अपने काउंसेल को अनुज्ञात करने या अंग्रेजी में अपने लिखित तर्क प्रस्तुत करने के विकल्प दिए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने उन्हें याद दिलाया कि अनुच्छेद 348 में स्पष्टतः यह अनुबन्ध है कि न्यायालय की भाषा अंग्रेजी में होनी चाहिए ।

113. विद्वान् लेखक श्री एम. पी. जैन ने भारतीय संवैधानिक विधि (छठा संस्करण, 2010) जिल्द 1, पृष्ठ 1107 पर यह लिखा है : "विधायिका की भाषा के संबंध में समस्या उद्भूत हुई । एक स्तर पर अपनी निजी शासकीय भाषा में अधिनियमित विधि को कैसे देश के अन्य भागों में समझा जाएगा और कैसे उच्चतम न्यायालय इसका निर्वचन करेगी; अतः, स्थिति की बाध्यता की यह मांग है कि जहां तक संभव हो सम्पूर्ण देश में विधि और न्यायालयों की भाषा में आधारभूत एकरूपता हो । तद्नुसार, संविधान न्यायिक और विधायी प्रक्रिया के क्षेत्रों में भाषा समस्या से संबंधित विशेष उपबंध करता है, इसके भीतर निहित विचार यह है कि न्यायालयों की भाषा के प्रश्न के समाधान में समय लगता है" ।

(दुर्गा दास बसु द्वारा लिखित भारत का संविधान, आठवां संस्करण, जिल्द 9, पृष्ठ 1086 की समीक्षा को निर्दिष्ट करें)

114. विद्वान् लेखक श्री एम. पी. जैन के अनुसार, कठिन समस्या तब उद्भूत होती है जब भाषा के प्रश्न पर विधि और न्यायालयों के संदर्भ में विचार किया जाता है । अंग्रेजी कामन विधि भारतीय विधिक व्यवस्था का आधार है और इसलिए अंग्रेजी भाषा विचार और अभिव्यक्ति का बहुत उपयोगी माध्यम रही है । भारत की न्यायिक व्यवस्था एकीकृत है क्योंकि देश की लागू विधियों में आधारभूत एकता विद्यमान है और एक उच्च न्यायालय के विनिश्चयों को निर्मुक्ततः अन्य उच्च न्यायालय में उद्धृत किए जाते हैं । इस प्रकार, विधि की भाषा की समस्या का विशेष महत्व है । यदि उच्च न्यायालय स्थानीय भाषा अंगीकृत करता है तो यह एक न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालयों में उद्धृत करने में कठिनाई होगी । उच्चतम न्यायालय के कार्यकरण में भी

कठिनाई पैदा होगी यदि उच्च न्यायालय भिन्न-भिन्न भाषाएं अंगीकृत करते हैं । प्रोफेसर (डा.) एम. सी. जैन कागजी ने अपनी पुस्तक भारत के संविधान, छठां संस्करण, जिल्द 2, पृष्ठ 1847 पर यह कहा – "विधि आयोग ने इस पहलू (अर्थात्, अंग्रेजी भाषा के महत्व) पर बल देते हुए विधिक भाषा के रूप में अंग्रेजी के फायदों का उल्लेख किया । यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं है कि यदि सम्पूर्ण देश में अंग्रेजी न होती तो विधि की व्यापक एकरूप व्यवस्था और समेकित न्यायपालिका का होना असम्भव होता । अतः, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि न्यायालयों में अंग्रेजी से हिन्दी में परिवर्तन अनिवार्यतः मन्द गति से होना चाहिए । तथापि, विधि की भाषा के रूप में हिन्दी का पूर्ण विकास किया जाना चाहिए । हिन्दी विधि शब्दावली तैयार की जानी चाहिए और पहली नजर में स्थानीय निकायों की उप-विधियों के प्रयोजनों के लिए और निचले न्यायालयों के कामकाज के लिए राज्यों में व्यवहृत की जानी चाहिए । जहां विनिश्चयों और सरल परिवर्तन के लिए आवश्यक हो लागू विधिक पदों को प्रतिधारित किया जाना चाहिए" ।

(दुर्गा दास बसु द्वारा लिखित भारत का संविधान, आठवां संस्करण, जिल्द 9, पृष्ठ 1087 की समीक्षा को निर्दिष्ट करें)

115. पूर्वोक्त पृष्ठभूमि से यह समझ में आता है कि जहां अनुच्छेद 348(1)(क) में यह उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी, भारत के संविधान के अनुच्छेद 348 का खंड (2) सामान्य नियम के अपवाद की प्रकृति का है । खंड (2) सर्वोपरि खंड से आरम्भ होता है जिसमें यह उपबंध हैं कि किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिन्दी भाषा का या किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा बशर्ते ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश अनुच्छेद 348(1) के अपेक्षानुसार अंग्रेजी भाषा में ही होंगे ।

116. राजभाषा अधिनियम की धारा 7 के अधीन शक्ति का प्रयोग उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किया गया है । उत्तर प्रदेश के माननीय

राज्यपाल द्वारा जारी सुसंगत अधिसूचना तारीख 5 सितम्बर, 1969 जो **प्रबन्धक समिति और एक अन्य** बनाम **जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद और अन्य**[1] वाले मामले में विचारार्थ उद्भूत हुआ, को बिहार के राज्यपाल द्वारा जारी अधिसूचना तारीख 9 मई, 1972 को माननीय तुलनात्मक विचार-विमर्श के लिए इसके नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

*"4. उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की कार्यवाहियों में हिन्दी का प्रयोग और आगे के प्रश्न पर फिर से विचार किया गया । अब भारत के संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (2) के उपबन्धों के अधीन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से यह आदेश देते हैं कि उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के समक्ष दायर किए जाने वाले शपथ-पत्रों में और उसकी कार्यवाहियों में प्रयोग करने के लिए वाद पुस्तिकाओं (पेपर बुक्स) में सम्मिलित किए जाने वाले बयानों और दस्तावेजों में हिन्दी का प्रयोग निम्नलिखित बातों के अधीन किया जा सकता है -

(1) यदि बेंच चाहे तो वह विशेष रूप से यह आदेश दे सकती है कि हिन्दी के शपथ-पत्रों, बयानों और दस्तावेजों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया जाए, और

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :-

"4. The question of progressive use of Hindi in the proceedings of the Allahabad High Court was again considered. Now, under Article 348(2) of the Constitution of India, the Governor of Uttar Pradesh is pleased to order with the prior consent of President, that the Hindi may be used in the affidavits to be filed and in the statements and documents to be included in the paper books prepared for the use of the Allahabad High Court, subject to the following conditions -

(1) If the Bench so desires, it may make special order that the affidavits, statements and documents in Hindi be translated into English, and

[1] ए. आई. आर. 1977 इलाहाबाद 164.

(2) यदि किसी निर्णय (जजमेंट) में हिन्दी के अभिवचनों (प्लीडिंगस), बयानों और दस्तावेजों आदि का कोई उदाहरण सम्मिलित किया गया हो तो अंग्रेजी भाषा में उसका रूपान्तर उसके तुरन्त बाद किया जाए ।"

117. **प्रबन्धक समिति** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने पैरा 16 में अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया :-

"इस प्रकार, अनुच्छेद 348(2) के अधीन जारी अधिसूचना तारीख 5 सितम्बर, 1969 के उचित निर्वचन के पश्चात् देवनागरी लिपि में हिन्दी में प्रारूपण और उत्तर प्रदेश राज्य के उच्च न्यायालय में न्यायनिर्णयन के लिए फाइल की गई रिट याचिका की वैधता के बारे में किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता । वस्तुतः, अधिसूचना की भाषा सभी अभिवचनों, जिसमें वादपत्र, लिखित कथन, रिट याचिका और अन्य दस्तावेजों, जिनका ऐसी कार्यवाहियों में फाइल किया जाना अपेक्षित हैं को आच्छादित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यंत व्यापक है ।"

118. पूर्वोक्त निर्णय पर विचार करते हुए, जब मैंने **स्वर्ण सिंह बग्गा** बनाम **एन. एन. सिंह, रजिस्ट्रार**[1] 1995 की एल. पी. ए. सं. 600 वाले मामले में पारित इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ निर्णय का परिशीलन किया तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उक्त मामले में अपीलार्थी का यह अनुरोध था कि उच्च न्यायालय की सभी कार्यवाहियां हिन्दी में होनी चाहिए, बहस हिन्दी में की जानी चाहिए और निर्णय भी हिन्दी भाषा में दिया जाना चाहिए । माननीय खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी द्वारा की गई प्रार्थना मंजूर नहीं की जा सकती किन्तु ऐसा कहते समय खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त

---

(2) If some extract ot pleadings, statements and documents in Hindi is incorporated in any judgment, English translation thereof my be made immediately thereafter."

[1] 2003 (1) पी. एल. जे. आर. 315.

किया कि "किसी व्यक्ति पर हिन्दी में आवेदन फाइल करने की कोई रोक नहीं है न ही हिन्दी में बहस करने के लिए किसी व्यक्ति पर कोई रोक है और वस्तुतः कई मामलों में यह इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किया जा रहा है" ।

119. **बिनय कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य**[1] वाले मामले में रिट याचिका की सुनवाई के दौरान **स्वर्ण सिंह बग्गा** (पूर्वोक्त) वाले मामले के इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय का अवलंब लिया गया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों की ओर से उठाए गए प्रारम्भिक आक्षेप पर विचार किया कि मुद्दे पर लागू विधियों को ध्यान में रखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका पटना उच्च न्यायालय में केवल अंग्रेजी में ही फाइल की जा सकती है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पटना उच्च न्यायालय नियम के नियम 1, अध्याय 3, भाग 2 को निर्दिष्ट किया जिसमें यह कथित है कि उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्येक आवेदन अंग्रेजी भाषा में लिखी गई याचिका द्वारा किए जाएंगे । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का परिशीलन किया, निर्णयज्ञ विधियों पर चर्चा की और यह निष्कर्ष निकाला कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और/या 227 के अधीन रिट याचिका पटना उच्च न्यायालय में केवल अंग्रेजी भाषा में पेश की जा सकती है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निर्णय के पैरा 9 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

> "इस प्रकार, मुद्दे पर लागू विधि के सुसंगत उपबंधों पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 226 और/या 227 के अधीन रिट याचिका जो अंग्रेजी में होगी, के सिवाय, याचिकाएं और शपथ-पत्र भी पटना उच्च न्यायालय में अंग्रेजी भाषा के विकल्प के रूप में, हिन्दी में पेश किए जा सकते हैं । इनके उपाबंध हिन्दी में हो सकते हैं और समुचित मामलों में उच्च न्यायालय इनके (उपाबंध) अनुवाद अंग्रेजी में देने का निदेश दे सकता है । कर प्रतिनिर्देशों से संबंधित सभी याचिकाएं केवल अंग्रेजी भाषा में ही पेश की जा सकती हैं ।"

---

[1] 2003 (2) बिहार ला जर्नल 418.

120. **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय को इस न्यायालय की माननीय खंड न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई, निर्णय 2010 (3) बिहार ला जर्नल (पी. एच. सी.) 83 में प्रकाशित है । माननीय खंड न्यायपीठ ने निर्णय के पैरा 4 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "आक्षेपित निर्णय इस आधार पर अग्रेषित है कि यह अधिसूचना जो अन्यथा इस न्यायालय में वैकल्पिक भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग का उपबंध करती है, में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिकाओं के बारे में एक अपवाद का वर्णन है । इस पर हमारे द्वारा सतर्कतापूर्वक विचार करने पर हम यह अभिनिर्धारित करना कठिन पाते हैं कि यह अंग्रेजी से भिन्न अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन आवेदनों के संस्थित किए जाने का प्रतिषेध करता है । हमारे विचार से, अधिसूचना को इसके समग्र रूप में पढ़ने से यह प्रतिबिम्बित होता है कि हिन्दी सिविल और दांडिक मामलों और शपथ-पत्रों द्वारा समर्थित अन्य आवेदनों की इस न्यायालय में वैकल्पिक भाषा होगी । तथापि, यह अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन फाइल की जाने वाली रिट याचिकाओं को अंग्रेजी में ही अनुज्ञात करने का अपवाद विहित करता है । यह शपथ-पत्रों द्वारा समर्थित आवेदनों जिसके अन्तर्गत रिट याचिकाएं भी हैं, के पेश किए जाने के लिए हिन्दी के वैकल्पिक भाषा के उपबंध करने वाले मूल उपबंध से विपथित नहीं करता । परन्तुक अधिसूचना के खंड 1 और 2 के अधिष्ठायी उपबंधों को नियंत्रित नहीं करता । यदि यह आशय रहा होता तो अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका का विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध न किया गया होता जैसा कि यह कर प्रतिनिर्देशों के मामलों में अंग्रेजी के सिवाय किसी अन्य भाषा में आवेदनों का प्रतिषेध करता है । अधिसूचना की भाषा स्पष्ट है और इसमें कोई संदिग्धता नहीं है । हम इसका कोई और अर्थ नहीं निकाल सकते जैसा इसमें साधारणतः उपबंध किया गया है ।"

121. मेरी विचारित राय में, **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले

मामले में अपना निर्णय देते हुए माननीय खंड न्यायपीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा की गई चर्चा की बारीकियों पर विचार नहीं किया । जैसा कि प्रतीत होता है कि खंड न्यायपीठ **स्वर्ण सिंह बग्गा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती खंड न्यायपीठ के निर्णय से प्रभावित हुआ जो माननीय खंड न्यायपीठ के निर्णय के पैरा 5 के पढ़ने से प्रतिबिम्बित होता है ।

122. पूर्वोक्त परिस्थिति में, जब यह रिट आवेदन इस न्यायालय की एक अन्य खंड न्यायपीठ के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया गया तब माननीय न्यायपीठ ने यह ध्यान दिया कि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में सभी सिविल और दांडिक मामलों में उच्च न्यायालय के समक्ष बहस और शपथ-पत्रों के साथ आवेदनों को फाइल करने के लिए अंग्रेजी के अलावा हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग का उपबंध है किन्तु हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग के एक अपवाद का उल्लेख है क्योंकि तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में यह कहा गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन आवेदनों के बारे में ऐसे आवेदनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग बना रहेगा । इसमें आगे यह कहा गया है कि आवेदनों के उपाबंध अनिवार्यतः अंग्रेजी में होने की अपेक्षा नहीं होगी । 'इसी प्रकार' शब्द जो अधिसूचना का निर्वचन करते समय झगड़े का जड़ है, यह कहने के लिए सम्मिलित किया गया है कि कर प्रतिनिर्देशों से संबंधित आवेदनों का 'केवल' अंग्रेजी में पेश किया जाना जारी रहेगा ।

123. माननीय खंड न्यायपीठ ने तारीख 1 मई, 2015 के अपने निर्देश के आदेश द्वारा **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ निर्णय की शुद्धता पर संदेह किया ।

124. तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना के परिशीलन के पश्चात्, मेरी यह विचारित राय है कि 'केवल' शब्द के पश्चात् दो शब्द 'इसी प्रकार' महत्वपूर्ण हैं और एक दूसरे के अनुकूल पढ़ा जाना अपेक्षित है । अधिसूचना के पहले भाग में यह कहते हुए विकल्प का उपबंध किया गया है कि पटना उच्च न्यायालय के सिविल और दांडिक मामलों की कार्यवाहियों और बहस के लिए, **वैकल्पिकतः हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाना प्राधिकृत है** (बल दिया गया) । शपथ-पत्रों के साथ आवेदनों

के फाइल किए जाने के बारे में, पुनः अधिसूचना के प्रथम भाग वैकल्पिक भाषा के रूप में हिन्दी भाषा के प्रयोग का उपबंध करता है । इस विस्तार तक, अधिसूचना में कोई संदिग्धता नहीं है । अधिसूचना के दूसरे भाग जिसके अधीन अधिसूचना के खंड (2) के परन्तुक द्वारा पुनः पहले भाग के खंड (2) से कुछ निकाला गया है । अब अधिसूचना के खंड (2) का परन्तुक यह कहते हुए अपवाद को समाविष्ट करता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन आवेदन अंग्रेजी में ही पेश किए जाते रहेंगे ।

125. मुझे यह प्रतीत होता है कि यदि अधिसूचना के लेखक का आशय हिन्दी को भी वैकल्पिक भाषा के रूप में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन आवेदनों के फाइल किए जाने के लिए अनुज्ञात करना था तो वह स्वयं अधिसूचना के पहले भाग में पूर्णतः समाविष्ट करता और अधिसूचना के खंड (2) के अधीन परन्तुक रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी । यह वैकल्पिक भाषा के विकल्प का अपवाद सृजित करने के समान है । परन्तुक में भी यह उल्लेख है कि आवेदनों के उपाबंधों की अंग्रेजी में होने की अनिवार्यता नहीं होगी । पुनः यदि अधिसूचना के लेखक का आशय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए वैकल्पिक भाषा के रूप में हिन्दी भाषा का अनुज्ञात करना था तो यह कहने की आवश्यकता नहीं थी कि अंग्रेजी में उपाबंधों/संलग्नकों का फाइल किया जाना अनिवार्य नहीं होगा । यह केवल मेरे विश्वास को मजबूत करता है कि अधिसूचना का लेखक ऐसी स्थिति के प्रति सचेत था जहां पहले परन्तुक के प्रथम भाग के आधार पर यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि आवेदनों के उपाबंध/संलग्नक भी अंग्रेजी में होंगे । ऐसी स्थिति से बचने के लिए यह स्पष्ट किया गया कि उपाबंध/संलग्नक का अंग्रेजी में होना अनिवार्य नहीं होगा ।

126. आगे, 'इसी प्रकार कर निर्देश (कर प्रतिनिर्देश) से संबंधित आवेदन भी केवल अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाते रहेंगे' शब्द का प्रयोग यह प्रदर्शित करता है कि कर प्रतिनिर्देशों के आवेदनों और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन आवेदनों को मामलों के एक वर्ग में

रखा गया है जिसकी बाबत आवेदन अंग्रेजी में ही पेश किए जाते रहेंगे ।

127. अतः, मैं तारीख 1 मई, 2015 के निर्देश के आदेश में इस मामले में माननीय खंड न्यायपीठ द्वारा व्यक्त मतों से सहमत हूं ।

128. मुझे यह प्रतीत होता है कि **बिनय कुमार सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, माननीय खंड न्यायपीठ ने अपने निर्णय में तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना के पहले भाग को मूल उपबंध के रूप में लिया किन्तु यह ध्यान नहीं दिया कि प्रथम भाग के मूल उपबंध को शपथ-पत्र के साथ आवेदन करने के लिए वैकल्पिक भाषा अर्थात् हिन्दी भाषा लाने के लिए किया गया था; ठीक इसके पश्चात् खंड (2) के परन्तुक के अधीन अपवाद लाया गया । अपने निर्णय के पैरा 4 में माननीय खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि परन्तुक अधिसूचना के खंड (1) और (2) के मूल उपबंधों को नियंत्रित नहीं करेगा । मेरी राय में, इस प्रक्रम पर माननीय खंड न्यायपीठ परन्तुक के वास्तविक प्रकृति पर ध्यान नहीं दे सके । "किसी परन्तुक का सामान्यतः प्रयोजन किसी अधिनियमिति की बात को अपवादित करना या उसमें अधिनियमित किसी बात को विषेशित करना है किन्तु परन्तुक अधिनियमिति की परिधि के भीतर होगा (केदारनाथ जूट मैन्यूफ्रैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड **बनाम** वाणिज्यिक कर अधिकारी, ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 12) । जैसा कि न्यायमूर्ति लूस द्वारा कहा गया है, 'जब किसी धारा में परन्तुक पाया जाता है तो नैसर्गिक उपधारणा यह है कि यदि परन्तुक न होता तो धारा के अधिनियमनकारी भाग में परन्तुक की विषयवस्तु को सम्मिलित किया जाता ।' लार्ड मैकमिलन के शब्दों में : 'किसी परन्तुक का उचित प्रयोजन किसी ऐसे मामले को अपवादित करने और उस पर विचार करने के संबंध में है जो अन्यथा रूप से मुख्य अधिनियमिति की सामान्य भाषा के भीतर आता है और उसके प्रभाव को उसी मामले तक सीमित रखना है ।' लार्ड मैकनाटन का यह अधिकथन है कि 'परन्तुक पूर्ववर्ती अधिनियमिति की एक शर्त हो सकती है जिसे बिल्कुल सही होने के लिए बहुत साधारण शब्द में अभिव्यक्त किया जाता ।' न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला द्वारा सामान्य नियम का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है : 'सामान्य नियम के रूप में परन्तुक को अधिनियमिति में शर्त डालने

या अपवाद के सृजन के लिए जोड़ा जाता है जो अधिनियमिति में है और साधारणतः, परन्तुक का निर्वचन सामान्य नियम कहकर नहीं किया जाता है ।' (शाह भोजराज कुंवरजी आयल मिल्स और गिनिंग फैक्टरी **बनाम** सुभाष चन्द्रा योगराज सिन्हा, ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1596) (न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह द्वारा लिखित पुस्तक प्रिंसिपल आफ स्टेट्चूरी इन्टरपिटेशन, दसवां संस्करण के अध्याय 3, पृष्ठ 185-186 देखें) ।" इस प्रकार, मेरी विचारित राय में, 2003 (2) बिहार ला जर्नल 418 में प्रकाशित निर्णय में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त मत सही विधि का अधिकथन करते हैं ।

129. इस निर्णय का समापन करने के पूर्व, मैं अपने भ्राता न्यायमूर्ति आशुतोष द्वारा व्यक्त मतों से सहमत होने की अपनी इच्छा अभिलिखित करता हूं कि यह कहते हुए इसमें पूर्वोक्त मतों की आलोचना की गई है कि ये समाज की वास्तविक वस्तु स्थिति से हीन एकांत के विचार हैं । कुछ आलोचक पहले न्यायालय की उनकी राय को दंभ भरा और विशिष्ट वर्ग के रूप में आलोचना करते हुए चर्चा करते रहे हैं, किन्तु तब मेरी राय में, जो उस मत पर ध्यान देते हैं उनको यह समझना होगा कि न्यायाधीश के रूप में मुझे भारत के संविधान और विधियों को कायम रखने के अपने कर्तव्य का पालन करना है ।

130. इस प्रकार, मैं संक्षेप में यह उल्लेख करता हूं कि प्रस्ताव के स्वीकार किए जाने और प्रारूप संविधान में भाग 14क पारित किए जाने की और संविधान में जोड़े जाने के पश्चात् डा. राजेन्द्र प्रसाद, संविधान सभा के माननीय अध्यक्ष ने सदन का स्थगन करने के पूर्व अपने समापन भाषण में यह कहा :-

> "इस शाम की कार्यवाहियां समाप्त होने वाली हैं किन्तु सदन को स्थगित करने के पूर्व मैं धन्यवाद के कुछ शब्द कहना चाहता हूं । मैं समझता हूं कि हमने अपने संविधान में एक ऐसा अध्याय अंगीकृत किया है जिसका देश को एक सूत्र में बांधने में बहुत दूरगामी परिणाम होगा । हमारे इतिहास में इसके पूर्व हमने किसी एक भाषा को सम्पूर्ण देश में शासन और प्रशासन की भाषा के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की थी । संस्कृत ऐसी भाषा थी जिसमें

हमारा सभी धार्मिक साहित्य और विद्या प्रतिष्ठापित थी और जिसमें अन्य साहित्य भी थे । इसमें कोई संदेह नहीं कि वह देश के सभी भागों में पढ़ी जाती थी किन्तु यह कभी ऐसी भाषा नहीं रही जिसका प्रयोग सम्पूर्ण देश में प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए किया जाता रहा हो । पहली बार आज हमें एक संविधान प्राप्त हुआ है, हम अपने संविधान में एक ऐसी भाषा का उपबंध करने जा रहे हैं जो संघ की प्रशासनिक भाषा होगी और वह भाषा समय की आवश्यकता के अनुरूप स्वयं विकसित होगी । मैं, हिन्दी या किसी अन्य भाषा का विद्वान् होने का दावा नहीं करता । मैं साहित्य में कोई योगदान देने का दावा नहीं करता किन्तु एक आम आदमी के रूप में इतना कह सकता हूं कि आज यह भविष्यवाणी करना संभव नहीं है कि इस भाषा जिसको हमने संघ की प्रशासनिक भाषा के रूप में अंगीकृत किया है, का भविष्य में क्या रूप होने जा रहा है । क्योंकि हिन्दी में पिछले कई अवसरों पर परिवर्तन हुआ है और हमारे पास इसकी कई शैलियां हैं, हमारे पास बृज भाषा में लिखित साहित्य है । खड़ी बोली अब हिन्दी में व्याप्त शैली है । मैं सोचता हूं कि देश की अन्य सभी भाषाओं से इसके सम्पर्क से इसे आगे विकास का अवसर मिलेगा । मुझे कोई संदेह नहीं कि हिन्दी समामेलन द्वारा खोने के बजाय फायदा पहुंचाएगी क्योंकि इसे देश की अन्य भाषाओं में सर्वोत्तम पाया गया है ।

हमने अब देश की राजनैतिक एकता प्राप्त कर ली है । अब हम एक और संबंध बनाने जा रहे हैं जो एक छोर से दूसरे छोर तक उन लोगों को एक दूसरे के साथ बांधेगा । मुझे आशा है कि सभी सदस्य इस संतोष की भावना के साथ अपने घर जाएंगे और वे लोग भी जो मतदान में हार गए हैं, इसे खिलाड़ी जैसी भावना से ग्रहण करेंगे और ऐसे कार्य में सहायता प्रदान करेंगे जो अब संविधान भाषा के बारे में संघ पर अधिरोपित करेगा ।

मैं दक्षिणी भारत के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता हूं । यह वर्ष 1917 का समय था जब महात्मा गांधी चम्पारण में थे और मुझे उनके साथ काम करने का अवसर मिला और उन्होंने दक्षिण

में हिन्दी का प्रचार आरम्भ करने का विचार बनाया और उन्होंने स्वामी सत्यदेव और अपने प्रिय पुत्र देवदास गांधी से जाने और कार्य आरम्भ करने का अनुरोध करने का विनिश्चय किया जो उन लोगों ने किया । तदन्तर वर्ष 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इंदौर सभा में इस प्रचार कार्य को सम्मेलन द्वारा अपने कार्यों में से प्रमुख कार्य के रूप में स्वीकार किया गया और कार्य में प्रगति हुई । इससे जुड़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ यद्यपि मैं लगभग 32 वर्षों की इस संपूर्ण अवधि के दौरान कार्य से आत्मीयता से जुड़े रहने का दावा नहीं कर सकता । मैं दक्षिण भारत के एक छोर से दूसरे छोर गया और यह देखकर मैं हृदय से बहुत प्रसन्न हुआ कि कैसे दक्षिण भारत के लोग इस भाषा के संबंध में महात्मा गांधी की पुकार के प्रति अपनी उत्सुकता दिखायी । मैं उन कठिनाइयों को जानता हूं जो उन लोगों ने झेली थीं किन्तु उत्साह जो उन लोगों ने इसके लिए प्रयोग में लाया, आश्चर्यजनक था । मैं कई अवसरों पर पुरस्कार वितरण से सहबद्ध रहा हूं और यह सुनकर सदस्यों को आनन्दित करेगा कि मैंने एक ही समय में दो पीढ़ियों और कुछ अवसरों पर तीन पीढ़ियों को पुरस्कार वितरित किए, अर्थात् भाषा का अध्ययन करने के लिए और जिन्होंने विहित परीक्षा उत्तीर्ण की थी और पुरस्कार और अपने डिप्लोमा के लिए दादा-दादी, माता-पिता और पोता-पोती को पुरस्कार दिए । कार्य में प्रगति हुई और दक्षिण भारत के लोगों ने इसे अपने कार्य के रूप में अंगीकार किया है । आजकल मैं नहीं जानता कि कितने लाख रुपए वे लोग इस हिन्दी प्रचार कार्य पर खर्च कर रहे हैं और मुझे आंकड़ों के बारे में याद नहीं कि कितने परीक्षार्थी हर वर्ष परीक्षाओं में बैठ रहे हैं । इसका यह अभिप्राय है कि भाषा को अखिल भारतीय प्रयोजनों की भाषा के रूप में दक्षिण भारत में अधिकांश लोगों द्वारा माना गया है और ऐसा उत्साह जो उन लोगों ने प्रदर्शित किया वे इसके लिए उत्तर भारत के लोगों से धन्यवाद के पात्र हैं, सम्मान के पात्र हैं, कृतज्ञता के पात्र हैं ।"

131. संविधान के अनुच्छेद 351 में अन्तर्विष्ट विशेष निदेश के

कारण, हमने इस रिट याचिका में पारित आदेश तारीख 24 जनवरी, 2019 में इस प्रकार अभिलिखित किया था :-

"याची के विद्वान् काउंसेल श्री इंद्रदेव प्रसाद, विद्वान् महाधिवक्ता श्री ललित किशोर और बिहार राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री योगेन्द्र प्रसाद सिन्हा को सुना ।

इस न्यायपीठ के समक्ष उठाए गए विवाद्यक इस पूर्ण न्यायपीठ द्वारा उत्तर दिए जाने के प्रयोजनार्थ किए गए निवेश के संदर्भ में तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना में योजित भाषा के निर्वचन से संबंधित हैं

हम विचार-विमर्श के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह अधिक समुचित होगा यदि इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कि बिहार राज्य हिंदी भाषी क्षेत्रों के अंतर्गत आने वाला राज्य है, संविधान के लागू होने के पश्चात् वर्तमान संदर्भ में उत्पन्न अपेक्षाओं की समुचित रूप से पूर्ति किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 9 मई, 1972 की उक्त अधिसूचना पर राज्य सरकार द्वारा नियुक्त विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा दिए गए परामर्श के आधार पर पुनर्विचार किया जाए ।

हमारे विचार में याचिकाओं इत्यादि के प्रारूपण में प्रयोग की जाने वाली भाषा के प्रयोग का विकल्प उच्च न्यायालय में न्यायालयिक कार्यवाहियों के संबंध में कोई असुविधा उत्पन्न किए बिना वैकल्पिक भाषा में हो सकता है, जहां तक याचिका के प्रस्तुतीकरण का संबंध है, किंतु यह संविधान के अनुच्छेद 348 सपठित 1963 के राजभाषा अधिनियम और साथ ही इस विवाद्यक पर बाध्यकारी न्यायिक उद्घोषणाओं के पुष्टिकरण में होना चाहिए ।

अत: उक्त निदेश के समाधान के प्रयोजनार्थ यह समुचित होगा कि मामले पर सरकार द्वारा पुनर्विचार किया जाए और मामले में आगे की कार्यवाही किए जाने के लिए इस न्यायालय को समुचित सूचना उपलब्ध कराई जाए । विद्वान् महाधिवक्ता तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का अंग्रेजी वृत्तांत भी उपलब्ध कराएंगे ।

विद्वान् महाधिवक्ता ने अनुरोध किया कि इस उद्देश्य के लिए चार सप्ताह का समय प्रदान किया जाए । मामले को चार सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित किया जाता है । पूर्ण न्यायपीठ को तारीख 7 मार्च, 2019 को अधिसूचित किया जाएगा ।

सभी मध्यक्षेपियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों के नाम और श्री हरपाल सिंह राणा, जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए, का नाम भी वाद सूची में दर्शित किया जाएगा ।"

132. हम दी गई अवधि के दौरान कुछ प्रगति की आशा कर रहे थे किन्तु जब तारीख 7 मार्च, 2019 को मामला विचारार्थ सामने आया तो न तो तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का अंग्रेजी पाठ हमारे समक्ष रखा गया और न ही हमें हमारे आदेश के आलोक में राज्य सरकार की ओर से किसी चर्चा या विचार-विमर्श के संदर्भ में कोई फीडबैक प्राप्त हुआ ।

133. यहां उपरोक्त मेरे निर्णय में कथित कारणों से, मैंने तारीख 9 मई, 1972 की अधिसूचना का निर्वचन किया जिससे कि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन आवेदन पटना उच्च न्यायालय में केवल अंग्रेजी भाषा में फाइल किए जाएं किन्तु मैं यह इच्छा करता हूं कि राज्य सरकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 में यथा अन्तर्विष्ट विशेष निदेशों का परिशीलन करेगी और समुचित अधिसूचना जारी करेगी ।

(राजीव रंजन प्रसाद)
न्यायाधीश

मूल लेख पश्चात्

न्यायमूर्ति आशुतोष कुमार

134. जहां तक संबद्ध मतों के निष्कर्ष का संबंध है हम सभी लोगों द्वारा व्यक्त किए गए मत सारतः भिन्न हैं जिसके परिणामस्वरूप मेरे सम्मानित भ्राता न्यायमूर्ति राजीव रंजन प्रसाद और मेरे बीच परामर्श की आवश्यकता है ।

135. हम सभी लोगों द्‌वारा प्रारूपित मतों के तात्पर्य और आशय को सूचीबद्ध करने के लिए, तत्काल प्रतिनिर्देश के लिए यह कहा जा सकता है कि माननीय न्यायमूर्ति प्रसाद ने न्यायालय की भाषा और निर्णयज्ञ विधियों पर संवैधानिक बहस पर विचार करने और 1972 की अधिसूचना, जो वर्तमान द्‌वन्द्‌व का आधार है, का निर्वचन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन आवेदन तब तक ही अंग्रेजी भाषा में फाइल किए जा सकते हैं जब तक राज्य सरकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 में अन्तर्विष्ट विशेष निदेशों का पालन करते हुए ऐसी अधिसूचना में उपांतरण या समुचित नई अधिसूचना नहीं निकालती ।

136. यथा उपरोक्त, मुद्दे पर मेरा मत भ्राता न्यायमूर्ति प्रसाद द्‌वारा व्यक्त मत से सारतः भिन्न है । ऐसी कसौटी जिसका मैंने अपनी राय बनाने का आधार बनाया, राष्ट्र की भाषा, संस्कृति और विरासत के विकास का लक्ष्य है जिसे राज्य के नीति के निदेशक तत्वों और भारत के संविधान के अन्य उपबंधों और 1972 की अधिसूचना ऐसी रीति से पढ़ने पर भी अच्छी तरह से प्रतिध्वनित होता है कि यह उच्च न्यायालय में रिट याचिकाओं को फाइल करने में हिन्दी भाषा के प्रयोग को अपवर्जित नहीं करता, जो अधिकांशतः अंग्रेजी भाषा में फाइल किए जा रहे थे और फाइल किए जा रहे हैं । अधिसूचना के परन्तुक में 'इसी प्रकार' शब्द का प्रयोग 'केवल' पूर्ववर्ती शब्द के अभाव के कारण मेरे द्‌वारा अनावश्यक अभिनिर्धारित किया गया है जिसे मेरे अनुसार जानबूझकर 'कर प्रतिनिर्देश' पद के पहले प्रयुक्त किया गया है । अतः, पटना उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं पेश करने के लिए वादकारी और अधिवक्ता अंग्रेजी या हिन्दी भाषा का प्रयोग करते रह सकते हैं । इस प्रकार, मैंने यह मत व्यक्त किया जो भ्राता न्यायमूर्ति प्रसाद से सम्मत हैं कि प्रत्येक नागरिक अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को उस भाषा में अपनी शिकायत करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए जिसमें वह सर्वाधिक सहज है, ऐसी संसूचना को प्रभावी रूप से व्यक्त कर सकता है, सरल और अबाधित है ।

137. मुझे मुद्दे पर माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के विद्वतापूर्ण विचारों का परिशीलन करने का अवसर मिला जो हमारे विवेक से न केवल बहुआयामी और बहुरूपदर्शी है बल्कि अपनी परिधि के भीतर संविधान के कुछ उपबंधों और ऐसे उपबंधों की विवचना के आधार के परिस्कृत संवैधानिक निर्वचन को भी सम्मिलित करता है ।

138. माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दी गई राय सूक्ति रूप में और सारगर्भित रूप से कुछ वाक्यों में बहुस्तरीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है ; फिर भी निष्कर्ष निकालना आवश्यक है । माननीय न्यायमूर्ति ने विषय पर विधि की चर्चा करने के पश्चात् 1972 की अधिसूचना के शब्दों पर मर्मस्पर्शी जांच की ; संविधान के पूर्वजों की आकांक्षाओं का विश्लेषण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि अधिसूचना, कड़े विधिक शब्दों में, रिट याचिकाओं और 'कर प्रतिनिर्देशों' को देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा के प्रयोग को अवैध घोषित करना अनुज्ञेय विधिक पैरामीटर के भीतर है । उनके द्वारा दी गई राय का लक्ष्य किसी भाषा की प्रमुखता के विरोध को सुलझाना नहीं है बल्कि बिहार राज्य, जो मुख्यतः हिन्दी भाषी राज्य है, के विशिष्ट/सीमित संदर्भ में 1972 की अधिसूचना को विचार करने के गौण/सूक्ष्म दृष्टिकोण से सम्पूर्ण भारत के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण विधिक प्रणाली को दृष्टिगत करना है ।

139. तथापि, बहुत निपुणता के साथ माननीय मुख्य न्यायमूर्ति ने अधिसूचना को इस तरह पढ़ा कि उक्त अधिसूचना का परन्तुक को इस अभिप्राय का निर्वचन करने के लिए एकांत का सहारा लेते हुए हाशिए से हटकर मंथन किया गया है कि हिन्दी को अंग्रेजी के अपवर्जन तक प्रतिषिद्ध नहीं किया गया है । मुलम्मा जो भ्राता न्यायमूर्ति प्रसाद और मेरे द्वारा दिए गए निर्वचन को व्यक्त करता है यह है कि देवनागरी लिपि, विशेषकर रिट याचिकाओं के संदर्भ में, में हिन्दी भाषा के प्रयोग के किसी प्रतिषेध के अभाव में, हिन्दी को ऐसी याचिकाओं के पेश करने के लिए वैकल्पिक भाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है किन्तु इस केवियट के साथ कि हिन्दी पाठ के साथ-साथ प्राधिकृत अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध कराया जाए ।

140. हमने, अपने संबद्ध मतों पर पुनर्विचार करने के पश्चात्, यह निष्कर्ष निकाला कि माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा किया गया 1972 की अधिसूचना का निर्वचन हिन्दी भाषा के संरक्षण और संवर्धन की आकांक्षाओं में सहायता प्रदान करने और वहीं सतत् बढ़ती मामला सामग्री, निर्णयज विधि और विधि के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य जो अधिकांशतः अंग्रेजी भाषा में हैं और जो विविध, बहुसांस्कृतिक और बहुभाषायी अपने देश की पृष्ठभूमि में आवश्यक है, की अभिगम्यता के कार्य के लिए अंग्रेजी न्यायालय की भाषा की एकान्तिकता को बनाए रखने के दोहरे प्रयोजनों को पूरा करता है ।

141. अतः, हम माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त की गई राय के प्रति अपना अनुमोदन देते हैं ।

142. इस प्रकार, निर्देश का उत्तर उसी रीति में दिया जाता है जैसा माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया ।

निर्देश का उत्तर दिया गया ।

अवि./पा./अस.

<u>संसद् के अधिनियम</u>

माल-विक्रय अधिनियम, 1930

(1930 का अधिनियम संख्यांक 3)[1]

[15 मार्च, 1930]

माल के विक्रय से संबंधित विधि को परिभाषित और संशोधित करने के लिए

अधिनियम

माल के विक्रय से संबंधित विधि को परिभाषित और संशोधित करना समीचीन है, अतः एतद्द्वारा यह निम्नलिखित रूप में अधिनियमित किया जाता है :-

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (1) यह अधिनियम [2]*** माल-विक्रय अधिनियम, 1930 कहा जा सकेगा ।

[3][(2) इसका विस्तार [4][जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय] संपूर्ण भारत पर है ।]

(3) यह जुलाई, 1930 के प्रथम दिन को प्रवृत्त होगा ।

---

[1] इस अधिनियम का विस्तार बरार पर 1941 के अधिनियम सं. 4 द्वारा दादरा और नागर हवेली पर ; 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1-7-1965 से) गोवा, दमण और दीव पर ; 1963 के विनियम सं. 11 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा पाण्डिचेरी पर ; 1968 के अधिनियम सं. 26 की धारा 3, अनुसूची द्वारा लक्षद्वीप पर ; 1965 के विनियम सं. 8 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा (1-10-1967 से) ; तथा सिक्किम पर अधिसूचना सं. का. आ. 645 (अ), तारीख 24-8-1984, भारत का राजपत्र (अंग्रेजी) आसाधारण, भाग II, अनुभाग 3 (ii) (1-9-1984 से) किया गया है ।

[2] 1963 के अधिनियम सं. 33 की धारा 2 द्वारा "भारतीय" शब्द का लोप किया गया ।

[3] विधि अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग ख राज्यों के सिवाय" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कोई बात, विषय या संदर्भ में विरुद्ध न हो, –

(1) "क्रेता" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो माल का क्रय करता है या क्रय करने का करार करता है ;

(2) "परिदान" से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को कब्जे का स्वेच्छया अन्तरण अभिप्रेत है;

(3) माल का, "परिदेय स्थिति" में होना तब कहा जाता है जबकि वह ऐसी स्थिति में हो कि क्रेता उसका परिदान लेने के लिए संविदा के अधीन आबद्ध हो ;

(4) "माल पर हक की दस्तावेज" के अन्तर्गत वहन पत्र, डाक-वारण्ट, भाण्डागारिक प्रमाणपत्र, घाटवाल का प्रमाणपत्र, रेल-रसीद [1][बहुविध परिवहन दस्तावेज], माल के परिदान के लिए वारण्ट या आदेश और ऐसी अन्य कोई भी दस्तावेज आती है जिसका कारबार के मामूली अनुक्रम में उपयोग माल पर कब्जे या नियंत्रण के सबूत के रूप में किया जाता है या जो उस दस्तावेज पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति को वह माल जिसके बारे में वह दस्तावेज है अन्तरित या प्राप्त करने के लिए, या तो पृष्ठांकन द्वारा या परिदान द्वारा प्राधिकृत करती है या प्राधिकृत करने वाली तात्पर्यित है ;

(5) "कसूर" से सदोष कार्य या व्यतिक्रम अभिप्रेत है ;

(6) "भावी माल" से वह माल अभिप्रेत है जिसे विक्रय की संविदा करने के पश्चात् विक्रेता को विनिर्मित या उत्पादित या अर्जित करना है ;

(7) "माल" से अनुयोज्य दावों और धन से भिन्न हर किस्म की जंगम सम्पत्ति अभिप्रेत है, तथा इसके अन्तर्गत आते हैं स्टाक और अंश, उगती फसलें, घास और भूमि से बद्ध या उसकी भागरूप ऐसी चीजें जिनका विक्रय से पूर्व या विक्रय की संविदा के अधीन भूमि से पृथक् किए जाने का करार किया गया हो ;

---

[1] 1993 के अधिनियम सं. 28 की धारा 31 और अनुसूची भाग 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

(8) वह व्यक्ति "दिवालिया" कहलाता है जिसने कारबार के मामूली अनुक्रम में अपने ऋणों का संदाय बन्द कर दिया हो या जो अपने ऋणों का, जैसे-जैसे वे शोध्य होते जाएं संदाय न कर सकता हो, चाहे उसने दिवालिएपन का कोई कार्य किया हो या नहीं ;

(9) "वाणिज्यिक अभिकर्ता" से ऐसा वाणिज्यिक अभिकर्ता अभिप्रेत है जो ऐसा अभिप्रेत होने के नाते कारबार के रूढ़िक अनुक्रम में या तो माल के विक्रय का या विक्रय के प्रयोजनों के लिए माल के परेषण का या माल के क्रय या माल की प्रतिभूति पर धन खड़ा करने का प्राधिकार रखता हो ;

(10) "कीमत" से वह प्रतिफल अभिप्रेत है जो माल के विक्रय का धन के रूप में है ;

(11) "संपत्ति" से माल में की साधारण संपत्ति, न कि केवल कोई विशेष संपत्ति अभिप्रेत है ;

(12) "माल की क्वालिटी" के अंतर्गत उनकी स्थिति या दशा भी आती है ;

(13) "विक्रेता" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो माल का विक्रय करता है या विक्रय करने का करार करता है ;

(14) "विनिर्दिष्ट माल" से वह माल अभिप्रेत है जो उस समय, जब विक्रय की संविदा की जाती है, परिलक्षित और करारित किया जाता है ; तथा

(15) उन पदों के जो इस अधिनियम में प्रयुक्त किए गए हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) में परिभाषित हैं, वे ही अर्थ हैं जो उन्हें उस अधिनियम में समनुदिष्ट हैं ।

3. **1872 के अधिनियम 9 के उपबंधों का लागू होना** – भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के अनिरसित उपबंध, वहां तक के सिवाय जहां तक कि वे इस अधिनियम के अभिव्यक्त उपबंधों से असंगत हैं, माल के विक्रय की संविदाओं को लागू होते रहेंगे ।

अध्याय 2

संविदा की विरचना

विक्रय की संविदा

4. **विक्रय और विक्रय करने का करार** – (1) माल के विक्रय की संविदा ऐसी संविदा है जिसके द्वारा विक्रेता माल में की संपत्ति क्रेता को कीमत पर अन्तरित करता है या अन्तरित करने का करार करता है । एक भागिक स्वामी और दूसरे भागिक स्वामी के बीच विक्रय की संविदा हो सकेगी ।

(2) विक्रय की संविदा आत्यन्तिक या सशर्त हो सकेगी ।

(3) जहां कि माल में की संपत्ति विक्रेता से क्रेता को विक्रय की संविदा के अधीन अन्तरित होती है वहां संविदा विक्रय कहलाती है, किन्तु जहां कि माल में की संपत्ति का अन्तरण किसी आगामी समय में या किसी ऐसी शर्त के अध्यधीन होना है जो तत्पश्चात् पूरी की जानी है वहां संविदा विक्रय करने का करार कहलाती है ।

(4) विक्रय करने का करार तब विक्रय हो जाता है जब वह समय बीत जाता है या वे शर्तें पूरी हो जाती हैं जिनके अध्यधीन माल में की संपत्ति अन्तरित होनी है ।

संविदा की प्ररूपिताएं

5. **विक्रय की संविदा कैसे की जाती है** – (1) विक्रय की संविदा कीमत पर माल का क्रय या विक्रय करने की प्रस्थापना और इस प्रस्थापना के प्रतिग्रहण द्वारा की जाती है । संविदा माल के तुरन्त परिदान के या कीमत के तुरन्त संदाय के या उन दोनों के लिए अथवा किस्तों में परिदान या संदाय के लिए अथवा इस बात के लिए कि परिदान या संदाय या दोनों मुल्तवी रहेंगे, उपबंध कर सकेगी ।

(2) किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबंधों के अध्यधीन यह है कि विक्रय की संविदा लिखित या वाचिक या भागतः लिखित और भागतः वाचिक तौर पर की जा सकेगी अथवा पक्षकारों के आचरण से विवक्षित हो सकेगी ।

संविदा की विषय-वस्तु

6. **वर्तमान या भावी माल** – (1) वह माल जो विक्रय की संविदा का विषय हो या तो ऐसा वर्तमान माल हो सकेगा जो विक्रेता के स्वामित्व या कब्जे में हो या भावी माल हो सकेगा ।

(2) उस माल के विक्रय के लिए संविदा हो सकेगी जिसका क्रेता द्वारा अर्जन ऐसी अनिश्चित घटना पर अवलम्बित हो जो घटित हो या न हो ।

(3) जहां कि विक्रय की संविदा द्वारा विक्रेता का भावी माल का साम्प्रतिक विक्रय करना तात्पर्यित है वहां वह संविदा उस माल का विक्रय करने के करार के रूप में प्रवृत्त होती है ।

7. **संविदा की जाने के पूर्व माल का नष्ट होना** – जहां कि संविदा विनिर्दिष्ट माल के विक्रय के लिए है, वहां यदि विक्रेता के ज्ञान के बिना वह माल उस समय, जब संविदा की गई थी, नष्ट हो गया था या इतना नुकसानग्रस्त हो गया था कि वह संविदा में के अपने वर्णन के अनुरूप नहीं रह गया था, तो संविदा शून्य है ।

8. **विक्रय के पूर्व किन्तु विक्रय करने के करार के पश्चात् माल का नष्ट हो जाना** – जहां कि करार विनिर्दिष्ट माल के विक्रय का है और तत्पश्चात् इसके पूर्व कि जोखिम क्रेता को संक्रान्त हो वह माल क्रेता या विक्रेता की तरफ के किसी कसूर के बिना नष्ट हो जाता है या इतना नुकसानग्रस्त हो जाता है कि वह करार में के अपने वर्णन के अनुरूप नहीं रह जाता वहां करार तद्द्वारा शून्य हो जाता है ।

कीमत

9. **कीमत अभिनिश्चित करना** – (1) विक्रय की संविदा में की कीमत उस संविदा द्वारा नियत की जा सकेगी या तद्द्वारा करारित रीति से नियत किए जाने के लिए छोड़ी जा सकेगी, या पक्षकारों के बीच की व्यवहार-चर्या द्वारा अवधारित की जा सकेगी ।

(2) जहां कि कीमत पूर्वगामी उपबंधों के अनुसार अवधारित नहीं की गई है, वहां क्रेता को युक्तियुक्त कीमत देगा । युक्तियुक्त कीमत

क्या है, यह तथ्य का प्रश्न है जो हर विशिष्ट मामले की परिस्थितियों पर अवलम्बित है ।

10. **मूल्यांकन पर विक्रय करने का करार** – (1) जहां कि इस निबन्धन पर माल का विक्रय करने का करार है कि कीमत किसी पर-व्यक्ति के मूल्यांकन द्वारा नियत की जानी है और ऐसा पर-व्यक्ति मूल्यांकन नहीं कर सकता या नहीं करता, वहां वह करार तद्द्वारा शून्य हो जाता है :

परन्तु यदि वह माल या उसका कोई भाग क्रेता को परिदत्त कर दिया गया हो और उसके द्वारा विनियोजित कर लिया गया हो, तो वह उसके लिए युक्तियुक्त कीमत देगा ।

(2) जहां कि विक्रेता या क्रेता के कसूर से ऐसा पर-व्यक्ति मूल्यांकन करने से निवारित हो जाता है, वहां जिस पक्षकार का कसूर नहीं है वह उस पक्ष के विरुद्ध जिसका कसूर है नुकसानी के लिए वाद ला सकेगा ।

शर्तें और वारंटियां

11. **समय के बारे में अनुबंध** – जब तक कि उस संविदा के निबंधनों से कोई भिन्न आशय प्रतीत हो संदाय के समय के बारे में अनुबंध विक्रय की संविदा के मर्म नहीं समझे जाते । समय के बारे में कोई अन्य अनुबंध उस संविदा का मर्म है या नहीं, यह बात उस संविदा के निबंधनों पर अवलंबित होती है ।

12. **शर्त और वारंटी** – (1) विक्रय की संविदा में कोई अनुबंध जो उस माल के बारे में हो जो उस संविदा का विषय है शर्त या वारंटी हो सकेगा ।

(2) शर्त संविदा के मुख्य प्रयोजन के लिए मर्मभूत वह अनुबंध है जिसका भंग उस संविदा को निराकृत मानने का अधिकार पैदा करता है ।

(3) वारंटी संविदा के मुख्य प्रयोजन का सांपार्श्विक अनुबंध है जिसका भंग नुकसानी के लिए दावा पैदा करता है किन्तु माल को प्रतिपेक्षित करने और संविदा को निराकृत मानने का अधिकार पैदा नहीं

करता ।

(4) विक्रय की संविदा में कोई अनुबंध शर्त है या वारंटी, यह बात हर एक मामले में उस संविदा के अर्थान्वयन पर अवलंबित होती है । अनुबंध शर्त हो सकता है, यद्यपि संविदा में उसे वारंटी कहा गया हो ।

13. **शर्त कब वारंटी मानी जा सकेगी** – (1) जहां कि विक्रय की संविदा किसी ऐसी शर्त के अध्यधीन है जिसकी पूर्ति विक्रेता द्वारा की जानी है, वहां क्रेता उस शर्त का अधित्यजन कर सकेगा अथवा यह निर्वाचन कर सकेगा कि शर्त के भंग को वारंटी का भंग, न कि संविदा को निराकृत मानने का आधार माने ।

(2) जहां कि विक्रय की संविदा विभाजनीय नहीं है और क्रेता ने माल को या उसके भाग को प्रतिगृहीत कर लिया है [1]*** वहां क्रेता द्वारा पूरी की जाने वाली किसी शर्त का भंग केवल वारंटी का भंग न कि माल को प्रतिपेक्षित करने का और संविदा को निराकृत मानने का आधार, माना जा सकेगा, जब तक कि संविदा में कोई तत्प्रभावी अभिव्यक्त या विवक्षित निबंधन न हो ।

(3) इस धारा की कोई भी बात किसी ऐसी शर्त या वारंटी के मामले पर प्रभाव न डालेगी जिसे पूरा करने से माफी उसकी असंभवता के कारण या अन्यथा विधि द्वारा प्रदत्त हो ।

14. **हक आदि के बारे में विवक्षित परिवंचना** – विक्रय की संविदा में, जब तक कि संविदा की परिस्थितियां ऐसी न हों कि भिन्न आशय दर्शित होता हो –

(क) विक्रेता की तरफ से विक्रय की दशा में यह विवक्षित शर्त रहती है कि उसे माल के विक्रय का अधिकार है और विक्रय करने के करार की दशा में यह विवक्षित शर्त रहती है कि उसे उस माल के विक्रय का अधिकार उस समय रहेगा जब सम्पत्ति संक्रांत होनी है ;

(ख) यह विवक्षित वारण्टी रहती है कि क्रेता को उस माल का

---

[1] 1963 के अधिनियम सं. 33 की धारा 3 द्वारा "या जहां कि संविदा उस विनिर्दिष्ट माल के लिए है जिसमें कि संपत्ति क्रेता को संक्रांत होती है" शब्दों का लोप किया गया ।

निर्बाध कब्जा प्राप्त होगा और वह ऐसे कब्जे का उपभोग करेगा ;

(ग) यह विवक्षित वारण्टी रहती है कि माल किसी पर-व्यक्ति के पक्ष में किए गए किसी ऐसे भार या विल्लंगम् से मुक्त रहेगा जो क्रेता को संविदा किए जाने के पूर्व या किए जाने के समय घोषित नहीं किया गया था या ज्ञात न था ।

15. **वर्णनानुसार विक्रय** – जहां कि संविदा वर्णनानुसार माल के विक्रय के लिए हो वहां यह विवक्षित शर्त रहती है कि माल वर्णन के अनुरूप होगा और यदि विक्रय नमूने और वर्णन दोनों के अनुसार हो तो माल के प्रपुंज का नमूने के अनुरूप होना पर्याप्त नहीं है जब तक कि माल वर्णन के अनुरूप भी न हो ।

16. **क्वालिटी या योग्यता के बारे में विवक्षित शर्तें** – इस अधिनियम के और किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबंधों के अध्यधीन यह है कि जिस माल का प्रदाय विक्रय की संविदा के अधीन किया गया है उसकी क्वालिटी के बारे में या किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए उसकी योग्यता के बारे में कोई विवक्षित वारण्टी या शर्त निम्नलिखित के सिवाय नहीं रहती है –

(1) जहां कि क्रेता वह विशिष्ट प्रयोजन, जिसके लिए माल अपेक्षित है, विक्रेता को अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से इस प्रकार ज्ञात करा देता है कि उससे यह दर्शित हो कि विक्रेता के कौशल या विवेकबुद्धि पर क्रेता भरोसा कर रहा है और माल उस वर्णन का है, जिस वर्णन के माल का प्रदाय विक्रेता के कारबार के अनुक्रम में है (चाहे विक्रेता उसका विनिर्माता या उत्पादक हो या नहीं), वहां वह विवक्षित शर्त होती है कि माल ऐसे प्रयोजन के लिए युक्तियुक्ततः योग्य होगा :

परन्तु विनिर्दिष्ट चीज के पेटेन्ट-नाम या अन्य व्यापार नाम से विक्रय की संविदा की दशा में उस चीज के किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए योग्य होने के बारे में कोई विवक्षित शर्त नहीं होगी ।

(2) जहां कि माल का ऐसे विक्रेता से वर्णनानुसार क्रय किया

जाता है जो उस वर्णन के माल का व्यापार करता है (चाहे वह उसका विनिर्माता या उत्पादक हो या नहीं), वहां यह विवक्षित शर्त होती है कि माल वाणिज्यिक क्वालिटी का होगा :

परन्तु यदि क्रेता ने माल की परीक्षा कर ली है तो उन त्रुटियों के बारे में जो ऐसी परीक्षा से प्रकट हो जानी चाहिए थी कोई विवक्षित शर्त नहीं होगी ।

(3) क्वालिटी के बारे में या विशिष्ट प्रयोजन के लिए योग्य होने के बारे में विवक्षित वारंटी या शर्त व्यापार की प्रथा द्वारा उपाबद्ध हो सकेगी ।

(4) अभिव्यक्त वारंटी या शर्त इस अधिनियम द्वारा विवक्षित वारंटी या शर्त का नकार नहीं करती जब तक कि वह उससे असंगत न हो ।

17. **नमूने के अनुसार विक्रय** – (1) विक्रय की संविदा वहां नमूने के अनुसार विक्रय के लिए होती है जहां कि संविदा में तत्प्रभावी अभिव्यक्त या विवक्षित निबंधन हो ।

(2) नमूने के अनुसार विक्रय के लिए संविदा की दशा में यह विवक्षित शर्त रहती है –

(क) कि माल का प्रपुंज क्वालिटी में नमूने के सदृश्य होगा ;

(ख) कि क्रेता को माल के प्रपुंज का नमूने से मिलान करने का युक्तियुक्त अवसर प्राप्त होगा ;

(ग) कि माल उसे अवाणिज्यिक बना देने वाली किसी ऐसी त्रुटि से मुक्त होगा जो नमूने की युक्तियुक्त परीक्षा से प्रकट न होती हो ।

अध्याय 3

संविदा के प्रभाव

विक्रेता और क्रेता के बीच संपत्ति का अन्तरण

18. **माल को अभिनिश्चित करना होगा** – जहां कि संविदा

अभिनिश्चित माल के विक्रय के लिए है वहां यदि और जब तक माल अभिनिश्चित नहीं कर लिया जाता, माल में की कोई सम्पत्ति क्रेता को अन्तरित नहीं होती ।

19. **सम्पत्ति तब संक्रांत होती है जब उसका संक्रांत होना आशयित हो** – (1) जहां कि संविदा विनिर्दिष्ट या अभिनिश्चित माल के विक्रय के लिए हो वहां उस माल में की सम्पत्ति क्रेता को उस समय अन्तरित होती है जिस समय उसका अन्तरित किया जाना उस संविदा के पक्षकारों द्वारा आशयित हो ।

(2) संविदा के निबन्धन, पक्षकारों का आचरण और मामले की परिस्थितियां पक्षकारों के आशय को अभिनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए ध्यान में रखी जाएंगी ।

(3) जब तक कि भिन्न आशय प्रतीत न हो, उस समय के बारे में जिस पर माल में की सम्पत्ति क्रेता को संक्रांत होनी है, पक्षकारों के आशय के अभिनिश्चयन के लिए नियम वे नियम हैं जो धारा 20 से लेकर 24 तक में अन्तर्विष्ट हैं ।

20. **परिदेय स्थिति में विनिर्दिष्ट माल** – जहां कि संविदा परिदेय स्थिति के विनिर्दिष्ट माल के विक्रय के लिए है, वहां उस माल में की संपत्ति क्रेता को उस समय संक्रान्त होती है जब संविदा की जाती है, और यह तत्वहीन है कि कीमत के संदाय का समय या माल के परिदान के समय या दोनों मुल्तवी कर दिए गए हैं ।

21. **विनिर्दिष्ट माल का परिदेय स्थिति में लाया जाना** – जहां कि संविदा विनिर्दिष्ट माल के विक्रय के लिए है और विक्रेता माल को परिदेय स्थिति में लाने के प्रयोजन से माल के प्रति कुछ करने के लिए आबद्ध है, वहां सम्पत्ति तब तक संक्रान्त नहीं होती जब तक वह कर नहीं दिया जाता और क्रेता को उसकी सूचना नहीं हो जाती ।

22. **परिदेय स्थिति में विनिर्दिष्ट माल, जब कि उसकी कीमत अभिनिश्चित करने के लिए उसके प्रति विक्रेता को कुछ करना है** – जहां कि संविदा परिदेय स्थिति के विनिर्दिष्ट माल के विक्रय के लिए है किन्तु विक्रेता कीमत अभिनिश्चित करने के प्रयोजन से माल को तोलने,

मापने, परखने या उसके बारे में कोई अन्य कार्य या बात करने के लिए आबद्ध है वहां सम्पत्ति तब तक संक्रान्त नहीं होती जब तक वह कार्य या बात नहीं कर दी जाती और क्रेता को उसकी सूचना नहीं हो जाती ।

23. **अनभिनिश्चित माल का विक्रय और विनियोग** – (1) जहां कि अनभिनिश्चित या भावी माल के वर्णनानुसार विक्रय की संविदा है और ऐसा माल जो उस वर्णन का और परिदेय स्थिति में है या तो क्रेता की अनुमति से विक्रेता द्वारा या विक्रेता की अनुमति से क्रेता द्वारा संविदा मद्दे अशर्त विनियोजित कर दिया जाता है वहां तदुपरि माल में की सम्पत्ति क्रेता को संक्रान्त हो जाती है । ऐसी अनुमति अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकेगी और विनियोग किए जाने के पूर्व या पश्चात् दी जा सकेगी ।

वाहक को परिदान – (2) जहां कि संविदा के अनुसरण में विक्रेता क्रेता को अथवा क्रेता को माल परेषित किए जाने के प्रयोजन से वाहक को या अन्य उपनिहिती को (चाहे वह क्रेता द्वारा नामित हो या न हो) माल का परिदान कर देता है और व्ययन का अधिकार आरक्षित नहीं रखता वहां यह समझा जाएगा कि उसने संविदा मद्दे उस माल का अशर्त विनियोग कर दिया है ।

24. **अनुमोदनार्थ अथवा "विक्रय या वापसी के लिए" भेजा गया माल** – जब कि क्रेता को माल अनुमोदनार्थ अथवा "विक्रय या वापसी के लिए" या ऐसे ही अन्य निबन्धनों पर परिदत्त किया जाता है तब माल में की सम्पत्ति का क्रेता को संक्रामण –

(क) उस समय होता है जब वह अपना अनुमोदन या प्रतिग्रहण विक्रेता को संज्ञापित करता है या उस संव्यवहार को अंगीकार करने का कोई अन्य कार्य करता है ;

(ख) उस दशा में जब कि वह अपना अनुमोदन या प्रतिग्रहण विक्रेता को संज्ञापित नहीं करता किन्तु प्रतिक्षेप की सूचना दिए बिना माल को प्रतिधारित रखता है, यदि माल की वापसी के लिए कोई समय नियत किया गया हो तो उस समय के अवसान पर होता है, और यदि कोई समय नियत नहीं किया गया हो तो

युक्तियुक्त समय के अवसान पर होता है ।

25. **व्ययन के अधिकार का आरक्षण** – (1) जहां कि संविदा विनिर्दिष्ट माल के विक्रय के लिए है या जहां कि माल संविदा मद्दे तत्पश्चात् विनियोजित कर दिया जाता है वहां विक्रेता उस माल के व्ययन का अधिकार संविदा या विनियोग के निबन्धनों द्वारा तब तक के लिए आरक्षित रख सकेगा जब तक अमुक शर्तें पूरी नहीं हो जातीं । ऐसी दशा में इस बात के होते हुए भी कि माल का परिदान क्रेता को, या क्रेता को उसका परेषण करने के प्रयोजन से वाहक को या अन्य उपनिहिती को, कर दिया गया है, माल में की सम्पत्ति क्रेता को तब तक संक्रान्त नहीं होती जब तक विक्रेता द्वारा लगाई गई शर्तें पूरी नहीं हो जाती ।

[1][(2) जहां कि माल पोत द्वारा भेजा जाता है या रेल द्वारा वहन किए जाने के लिए रेल-प्रशासन को परिदत्त किया जाता है और, यथास्थिति, वहन पत्र या रेल-रसीद पर माल विक्रेता के या उसके अभिकर्ता के आदेशानुसार परिदेय है वहां प्रथमदृष्ट्या यह समझा जाता है कि विक्रेता ने व्ययन का अधिकार आरक्षित कर लिया है ।

(3) जहां कि माल का विक्रेता क्रेता पर कीमत के लिए विनिमय-पत्र लिखता है और विनिमय-पत्र, यथास्थिति, वहन पत्र या रेल-रसीद के साथ क्रेता को इस दृष्टि से परेषित करता है कि विनिमय-पत्र प्रतिगृहीत कर लिया जाए या उसका भुगतान कर दिया जाए वहां यदि क्रेता विनिमय-पत्र का आदरण नहीं करता तो वह उस वहन पत्र या रेल-रसीद को लौटाने के लिए आबद्ध है और यदि वह उस वहन पत्र या रेल-रसीद को सदोष प्रतिधारित करता है तो माल में की संपत्ति उसको संक्रांत नहीं होती ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "रेल" और "रेल-प्रशासन" पदों के वे ही अर्थ होंगे जो भारतीय रेल अधिनियम, 1890 (1890 का 9) में उन्हें क्रमश: समनुदिष्ट हैं ।]

---

[1] 1963 के अधिनियम सं. 33 की धारा 4 द्वारा उपधारा (2) और उपधारा (3) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

26. **जोखिम प्रथमदृष्ट्या संपत्ति के साथ संक्रांत हो जाती है** – जब तक कि अन्यथा करारित न हो, माल तब तक विक्रेता की जोखिम पर रहता है जब तक उसमें की संपत्ति क्रेता को अंतरित नहीं हो जाती ; किन्तु जब उसमें की संपत्ति क्रेता को अंतरित हो जाती है तब चाहे परिदान किया गया हो या नहीं, माल क्रेता की जोखिम पर रहता है :

परन्तु जहां कि परिदान क्रेता या विक्रेता के कसूर से विलम्बित हो गया है वहां माल ऐसी किसी हानि की बाबत, जो ऐसे कसूर के अभाव में न हुई होती, उस पक्षकार की जोखिम पर रहता है जिसका कसूर हो :

परन्तु यह और भी कि इस धारा की कोई भी बात क्रेता या विक्रेता के उन कर्तव्यों या दायित्वों पर प्रभाव न डालेगी जो दूसरे पक्षकार के माल के उपनिहिती के नाते उसके हैं ।

हक का अन्तरण

27. **उस व्यक्ति द्वारा विक्रय जो स्वामी नहीं है** – इस अधिनियम और किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि जहां कि माल ऐसे व्यक्ति द्वारा बेचा जाता है जो उसका स्वामी नहीं है और जो स्वामी के प्राधिकार के अधीन या सम्मति से उसे नहीं बेचता वहां क्रेता उस माल पर उस हक से, जो विक्रेता का था, बेहतर हक नहीं अर्जित करता, जब तक कि माल का स्वामी विक्रेता के विक्रय-प्राधिकार का प्रत्याख्यान करने से अपने आचरण द्वारा प्रवारित नहीं हो जाता :

परन्तु जहां कि वाणिज्यिक अभिकर्ता माल पर या माल पर हक की दस्तावेज पर स्वामी की सम्मति से कब्जा रखता है वहां जब तक वह वाणिज्यिक अभिकर्ता के कारबार के मामूली अनुक्रम में कार्य कर रहा हो, उसके द्वारा किया गया कोई भी विक्रय वैसा ही विधिमान्य होगा मानो माल के स्वामी द्वारा वह ऐसा करने के लिए अभिव्यक्ततः प्राधिकृत हो :

परन्तु यह तब जब कि क्रेता सद्भावपूर्वक कार्य करे और विक्रय की संविदा के समय उसे यह सूचना न हो कि विक्रेता को विक्रय-प्राधिकार नहीं है ।

28. **संयुक्त स्वामियों में से एक द्वारा विक्रय** – यदि माल के कई

संयुक्त स्वामियों में से एक का उस माल पर एकमात्रिक कब्जा सहस्वामियों की अनुज्ञा से है तो उस माल में की सम्पत्ति ऐसे किसी व्यक्ति को अन्तरित हो जाती है जो ऐसे संयुक्त स्वामी से उसे सद्भावपूर्वक क्रय करे और जिसे विक्रय की संविदा के समय यह सूचना न हो कि विक्रेता को विक्रय-प्राधिकार नहीं है ।

29. **शून्यकरणीय संविदा के अधीन कब्जा रखने वाले व्यक्ति द्‌वारा विक्रय** – जब कि माल के विक्रेता ने भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) की धारा 19 या 19क के अधीन शून्यकरणीय संविदा के अधीन उस पर कब्जा अभिप्राप्त किया है किन्तु वह संविदा विक्रय के समय विखण्डित नहीं हो चुकी है, तब क्रेता उस माल पर अच्छा हक अर्जित कर लेता है; परन्तु यह तब जब कि वह उसे सद्भावपूर्वक और विक्रेता के हक की त्रुटि की सूचना के बिना क्रय करे ।

30. **विक्रय के पश्चात् विक्रेता या क्रेता का कब्जा रहना** – (1) जहां कि किसी व्यक्ति के माल का विक्रय कर देने पर भी उस माल पर या उस माल पर हक की दस्तावेजों पर कब्जा बना रहता है या होता है वहां उस व्यक्ति द्‌वारा या उसके लिए कार्य करने वाले वाणिज्यिक अभिकर्ता द्‌वारा उस माल का या हक की दस्तावेजों का किसी विक्रय, गिरवी या अन्य व्ययन के अधीन किसी ऐसे व्यक्ति को किया गया परिदान या अन्तरण जो उसे सद्भावपूर्वक और पूर्वतन विक्रय की सूचना के बिना प्राप्त करता है, वही प्रभाव रखेगा मानो परिदान या अन्तरण करने वाला व्यक्ति माल के स्वामी द्‌वारा वैसा करने के लिए अभिव्यक्ततः प्राधिकृत था ।

(2) जहां कि कोई व्यक्ति माल का क्रय करके या क्रय करने का करार करके उस माल का या उस माल पर हक की दस्तावेजों का कब्जा विक्रेता की सम्मति से अभिप्राप्त करता है वहां उस व्यक्ति द्‌वारा या उसके लिए कार्य करने वाले वाणिज्यिक अभिकर्ता द्‌वारा उस माल का या हक की दस्तावेजों का किसी विक्रय, गिरवी या अन्य व्ययन के अधीन किसी ऐसे व्यक्ति को किया गया परिदान या अन्तरण, जो उसे सद्भावपूर्वक और माल के बारे में मूल विक्रेता के किसी धारणाधिकार या अन्य अधिकार की सूचना के बिना प्राप्त करता है, ऐसा प्रभाव रखेगा मानो ऐसा धारणाधिकार या अधिकार अस्तित्व में था ही नहीं ।

अध्याय 4

संविदा का पालन

31. **विक्रेता और क्रेता के कर्तव्य** – विक्रेता का कर्तव्य है कि माल का परिदान और क्रेता का कर्तव्य है कि उसका प्रतिग्रहण और उसके लिए संदाय विक्रय की संविदा के निबन्धनों के अनुसार करे ।

32. **संदाय और परिदान समवर्ती शर्तें हैं** – जब तक कि अन्यथा करार न हुआ हो माल का परिदान और कीमत का संदाय समवर्ती शर्तें हैं अर्थात् विक्रेता कीमत के विनिमय में माल का कब्जा क्रेता को देने को तैयार और रजामन्द होगा और क्रेता माल के कब्जे के विनिमय में कीमत देने को तैयार और रजामन्द होगा ।

33. **परिदान** – विक्रीत माल का परिदान ऐसा कोई काम करके किया जा सकेगा जिसके बारे में पक्षकारों में करार हो कि वह परिदान माना जाएगा या जो माल पर क्रेता का या उसकी ओर से धारित करने के लिए प्राधिकृत व्यक्ति का कब्जा करा देने का प्रभाव रखता हो ।

34. **भागिक परिदान का प्रभाव** – सम्पूर्ण माल का परिदान चालू रहने के दौरान में माल के भाग का परिदान ऐसे माल में की सम्पत्ति के संक्रमण के प्रयोजन के लिए वही प्रभाव रखता है जो सम्पूर्ण का परिदान ; किन्तु माल के भाग का ऐसा परिदान, जो उसे सम्पूर्ण से पृथक् करने के आशय से किया जाए, शेष के परिदान के रूप में प्रवृत्त नहीं होता ।

35. **परिदान के लिए क्रेता आवेदन करे** – कोई अभिव्यक्त संविदा न हो तो, जब तक क्रेता परिदान के लिए आवेदन न करे माल का विक्रेता उसका परिदान करने के लिए आबद्ध नहीं है ।

36. **परिदान विषयक नियम** – (1) यह बात कि माल का कब्जा क्रेता को लेना है या माल क्रेता को विक्रेता द्वारा भेजा जाना है हर मामले में पक्षकारों के बीच अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा पर अवलंबित है कोई ऐसी संविदा न हो तो विक्रीत माल का परिदान उस स्थान पर जिसमें यह विक्रय के समय हो और विक्रय करने के लिए करारित माल का परिदान उस स्थान पर जिसमें वह विक्रय करने के करार के समय

हो या यदि माल तब अस्तित्व में न हो तो उस स्थान पर, जिसमें वह विनिर्मित या उत्पादित किया जाता है, किया जाएगा ।

(2) जहां कि विक्रय की संविदा के अधीन क्रेता को माल भेजने के लिए विक्रेता आबद्ध हो, किन्तु उसे भेजने के लिए कोई समय नियत न हो वहां विक्रेता उसे युक्तियुक्त समय के अन्दर भेजने के लिए आबद्ध है ।

(3) जहां कि माल-विक्रय के समय किसी पर-व्यक्ति के कब्जे में हो, वहां क्रेता को विक्रेता द्वारा परिदान नहीं होता यदि और जब तक ऐसा पर-व्यक्ति क्रेता से यह अभिस्वीकार न कर ले कि वह माल को उसकी ओर से धारित किए हुए है :

परन्तु इस धारा की कोई भी बात माल पर हक की किसी दस्तावेज के प्रदान या अन्तरण के प्रवर्तन पर प्रभाव न डालेगी ।

(4) परिदान की मांग या निविदा, जब तक कि वह युक्तियुक्त समय पर न की जाए, प्रभावहीन मानी जा सकेगी युक्तियुक्त समय क्या है, यह तथ्य का प्रश्न है ।

(5) जब तक कि अन्यथा करार न हो, माल को परिदेय स्थिति में लाने के और तदनुषंगिक व्यय विक्रेता द्वारा उठाए जाएंगे ।

37. **गलत परिमाण का परिदान** – (1) जहां कि विक्रेता उस परिमाण से, जिसके विक्रय की संविदा उसने की थी, कम परिमाण के माल का परिदान क्रेता को करता है वहां क्रेता उसे प्रतिक्षेपित कर सकेगा, किन्तु यदि क्रेता ऐसे परिदत्त माल को प्रतिगृहीत कर लेता है तो वह संविदा-दर से उसके लिए संदाय करेगा ।

(2) जहां कि विक्रेता उस परिमाण से, जिसके विक्रय की संविदा उसने की थी, अधिक परिमाण के माल का परिदान क्रेता को करता है वहां क्रेता उस माल को, जो संविदा के अन्तर्गत है, प्रतिगृहीत कर सकेगा और शेष को प्रतिक्षेपित कर सकेगा अथवा सम्पूर्ण को प्रतिक्षेपित कर सकेगा । यदि क्रेता ऐसे परिदत्त समस्त माल को प्रतिगृहीत कर ले तो वह संविदा-दर से उसके लिए संदाय करेगा ।

(3) जहां कि विक्रेता उस माल को, जिसके विक्रय की उसने संविदा की थी, उससे भिन्न वर्णन के ऐसे माल से, जो संविदा के अन्तर्गत नहीं

है, मिश्रित करके परिदत्त करता है वहां क्रेता उस माल को प्रतिगृहीत कर सकेगा जो संविदा के अनुसार है और शेष को प्रतिक्षेपित कर सकेगा, अथवा समस्त को प्रतिक्षेपित कर सकेगा ।

(4) इस धारा के उपबंध व्यापार की प्रथा अथवा पक्षकारों के बीच के विशेष करार या व्यवहार-चर्या के अध्यधीन हैं ।

38. **किस्तों में परिदान** – (1) जब तक कि अन्यथा करार न हो, माल का क्रेता उसका परिदान किस्तों में प्रतिगृहीत करने के लिए आबद्ध नहीं है ।

(2) जहां कि संविदा ऐसे माल के विक्रय के लिए हो जिसका परिदान ऐसी कथित किस्तों में किया जाना है, जिनके लिए संदाय पृथक्-पृथक् किया जाना है और विक्रेता एक या अधिक किस्तों की बाबत कोई परिदान नहीं करता है या त्रुटियुक्त परिदान करता है अथवा क्रेता एक या अधिक किस्तों का परिदान लेने में उपेक्षा या लेने से इंकार या एक या अधिक किस्तों के लिए संदाय करने में उपेक्षा या संदाय करने से इंकार करता है वहां यह प्रश्न हर एक मामले में संविदा के निबन्धनों और मामले की परिस्थितियों पर अवलम्बित होगा कि संविदा का भंग सम्पूर्ण संविदा का निराकरण है या वह उसका ऐसा पृथक्करणीय भंग है, जिससे प्रतिकर के लिए दावा तो उद्भूत होता है किन्तु सम्पूर्ण संविदा को निराकृत मानने का अधिकार नहीं ।

39. **वाहक या घाटवाल को परिदान** – (1) जहां कि विक्रय की संविदा के अनुसरण में विक्रेता को यह प्राधिकार है या उससे यह अपेक्षित है कि वह क्रेता को माल भेजे, वहां उस माल का क्रेता के पास पारेषण करने के प्रयोजन से वाहक को परिदान, चाहे वाहक क्रेता द्वारा नामित हो या न हो, अथवा घाटवाल को सुरक्षित अभिरक्षा के लिए परिदान प्रथमदृष्ट्या उस माल का क्रेता को परिदान समझा जाता है ।

(2) जब तक कि क्रेता द्वारा विक्रेता अन्यथा प्राधिकृत न हो, वह क्रेता की ओर से वाहक से या घाटवाल से ऐसी संविदा करेगा, जो माल की प्रकृति और मामले की अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए युक्तियुक्त हो । यदि विक्रेता ऐसा करने का लोप करता है और माल

अभिवहन के अनुक्रम में, अथवा उस समय, जब वह घाटवाल की अभिरक्षा में है, खो जाता है या नुकसानग्रस्त हो जाता है, तो क्रेता, वाहक या घाटवाल को किया गया परिदान अपने को किया गया परिदान मानने से इंकार कर सकेगा या विक्रेता को नुकसानी के लिए उत्तरदायी ठहरा सकेगा ।

(3) जब तक कि अन्यथा करार न हो, जहां कि विक्रेता द्वारा क्रेता को ऐसे मार्ग से, जिसमें समुद्र अभिवहन अन्तर्वलित है, ऐसी परिस्थितियों में माल भेजा जाता है, जिसमें प्रायः बीमा कराया जाता है, वहां क्रेता को विक्रेता ऐसी सूचना देगा जिससे क्रेता उसके समुद्र अभिवहन के दौरान के लिए उसका बीमा कराने को समर्थ हो सके और यदि विक्रेता ऐसा करने में असफल रहता है तो माल ऐसे समुद्र अभिवहन के दौरान में उसकी जोखिम पर समझा जाएगा ।

40. **जोखिम, जहां कि माल का परिदान दूर के स्थान पर किया जाता है** – जहां कि माल का विक्रेता अपनी ही जोखिम पर उसका परिदान उस स्थान से भिन्न स्थान पर करने का करार करता है जहां वह माल-विक्रय के समय है, वहां, ऐसा होते हुए भी क्रेता, जब तक कि अन्यथा करार न हो, उस माल में ऐसे क्षय की जोखिम उठाएगा जो अभिवहन के अनुक्रम में अवश्यमेव हुआ करता है ।

41. **माल की परीक्षा करने का क्रेता का अधिकार** – (1) जहां कि क्रेता को ऐसा माल परिदत्त किया जाता है, जिसकी परीक्षा उसने तत्पूर्व नहीं की है, वहां यह न समझा जाएगा कि उसने उसका प्रतिग्रहण कर लिया है यदि और जब तक उसे यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजन से कि वह संविदा के अनुरूप है या नहीं, उसकी परीक्षा करने का युक्तियुक्त अवसर न मिल गया हो ।

(2) यदि अन्यथा करार न हो, तो जब विक्रेता माल का परिदान क्रेता को निविदत्त करता है तब वह इस बात के लिए आबद्ध है कि यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजन से कि माल संविदा के अनुरूप है या नहीं, माल की परीक्षा करने का युक्तियुक्त अवसर, प्रार्थना किए जाने पर, क्रेता को दे ।

42. **प्रतिग्रहण** – क्रेता ने माल को प्रतिगृहीत कर लिया है, यह तब समझा जाता है, जब वह विक्रेता को यह प्रज्ञापित कर देता है कि उसने वह माल प्रतिगृहीत कर लिया है, या जब माल क्रेता को परिदत्त कर दिया गया है और उसने उसके संबंध में ऐसा कोई कार्य किया है जो विक्रेता के स्वामित्व से असंगत है या जब युक्तियुक्त समय के बीत जाने पर भी वह विक्रेता को अपना प्रतिक्षेपण प्रज्ञापित किए बिना माल को प्रतिधारित किए रहता है ।

43. **क्रेता प्रतिक्षेपित माल को वापस करने के लिए आबद्ध नहीं है** – जब तक कि अन्यथा करार न हो, जहां कि क्रेता को माल परिदत्त किया जाता है और वह उसका प्रतिग्रहण करने से इंकार, ऐसा करने का अधिकार रखते हुए, करता है वहां वह उसे विक्रेता को वापस करने के लिए आबद्ध नहीं है, किन्तु यह पर्याप्त होगा कि वह विक्रेता को प्रतिज्ञापित कर दे कि वह उसका प्रतिग्रहण करने से इंकार करता है ।

44. **माल का परिदान लेने में उपेक्षा या लेने से इंकार करने के लिए क्रेता का दायित्व** – जब कि विक्रेता माल का परिदान करने को तैयार और रजामन्द है और क्रेता से परिदान लेने की प्रार्थना करता है और क्रेता ऐसी प्रार्थना के पश्चात् युक्तियुक्त समय के अन्दर उस माल का परिदान नहीं लेता है तब वह विक्रेता के प्रति ऐसी किसी हानि के लिए, जो परिदान लेने में क्रेता द्वारा की गई उपेक्षा या इंकार से हुई है, और माल की देख-रेख और अभिरक्षा के युक्तियुक्त प्रभार के लिए भी, दायी है :

परन्तु जहां कि परिदान लेने में क्रेता द्वारा की गई उपेक्षा या इंकार संविदा के निराकरण की कोटि में आता है वहां इस धारा की कोई भी बात विक्रेता के अधिकारों पर प्रभाव न डालेगी ।

अध्याय 5

माल पर असंदत्त विक्रेता के अधिकार

45. **"असंदत्त विक्रेता" की परिभाषा** – (1) माल का विक्रेता इस अधिनियम के अर्थ के अन्दर "असंदत्त विक्रेता" तब समझा जाता है –

(क) जब कि पूरी कीमत संदत्त या निविदत्त न की गई हो;

(ख) जब कि विनिमय-पत्र या अन्य परक्राम्य लिखत सशर्त संदाय के रूप में प्राप्त हुई हो और जिस शर्त पर वह प्राप्त हुई थी वह लिखत के अनादरण के कारण या अन्यथा पूरी न हुई हो ।

(2) इस अध्याय में "विक्रेता" पद के अन्तर्गत ऐसा कोई भी व्यक्ति आता है जो विक्रेता की स्थिति में हो, उदाहरणार्थ विक्रेता का वह अभिकर्ता जिसे वहन-पत्र पृष्ठांकित कर दिया गया है या वह परेषक या अभिकर्ता जिसने कीमत स्वयं दे दी है या जो कीमत के लिए सीधे उत्तरदायी है ।

46. **असंदत्त विक्रेता के अधिकार** - (1) इस अधिनियम के और किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि इस बात के होते हुए भी कि माल में की सम्पत्ति क्रेता को संक्रान्त हो गई हो, माल के असंदत्त विक्रेता को उस नाते विधि की विवक्षा से निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं -

(क) माल पर कीमत लेखे तब तक धारणाधिकार जब तक उसका उस पर कब्जा रहता है;

(ख) क्रेता के दिवालिया हो जाने की दशा में, माल अपने कब्जे से अलग कर देने के पश्चात् उसे अभिवहन में रोक देने का अधिकार;

(ग) पुनर्विक्रय का अधिकार, जैसा इस अधिनियम द्वारा परिसीमित है ।

(2) जहां कि माल में की सम्पत्ति क्रेता को संक्रान्त नहीं हुई है वहां असंदत्त विक्रेता को अपने अन्य उपचारों के अतिरिक्त परिदान के विधारण का ऐसा अधिकार प्राप्त है, जो विक्रेता के उस धारणाधिकार और अभिवहन में रोकने के अधिकार के समान और समविस्तीर्ण है जो उसे उस दशा में प्राप्त होता है जब क्रेता को सम्पत्ति संक्रान्त हो जाती है ।

असंदत्त विक्रेता का धारणाधिकार

47. **विक्रेता का धारणाधिकार** – (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि माल का असंदत्त विक्रेता, जिसका कब्जा माल

पर है, उस पर निम्नलिखित दशाओं में तब तक कब्जा प्रतिधारित रखने का हकदार है, जब तक कीमत संदत्त या निविदत्त नहीं कर दी जाती, अर्थात् :-

(क) जहां कि माल का विक्रय उधार के बारे में किसी अनुबन्ध के बिना किया गया है;

(ख) जहां कि माल का विक्रय उधार पर किया गया है किन्तु उधार की अवधि का अवसान हो गया है;

(ग) जहां कि क्रेता दिवालिया हो जाता है ।

(2) विक्रेता अपने धारणाधिकार का प्रयोग इस बात के होते हुए भी कर सकेगा कि माल पर उसका कब्जा क्रेता के अभिकर्ता या उपनिहिती के रूप में है ।

48. **भागिक परिदान** – जहां कि असंदत्त विक्रेता ने माल का भागिक परिदान कर दिया है वहां वह अपने धारणाधिकार का प्रयोग शेष पर कर सकेगा, जब तक कि ऐसा भागिक परिदान ऐसी परिस्थितियों में न किया गया हो जो धारणाधिकार के अधित्यजन का करार दर्शित करती हों ।

49. **धारणाधिकार का पर्यवसान** – (1) माल का असंदत्त विक्रेता माल पर अपना धारणाधिकार खो देता है –

(क) जब वह क्रेता के पास पारेषित किए जाने के प्रयोजन से माल को, उसके व्ययन का अधिकार आरक्षित किए बिना, वाहक या अन्य उपनिहिती को परिदत्त कर देता है ;

(ख) जब क्रेता या उसका अभिकर्ता माल पर कब्जा विधिपूर्वक अभिप्राप्त कर लेता है ;

(ग) उसके अधित्यजन द्वारा ।

(2) माल का असंदत्त विक्रेता, जिसका उस पर धारणाधिकार है, अपना धारणाधिकार केवल इस कारण नहीं खो देता कि उस माल की कीमत के लिए उसने डिक्री अभिप्राप्त कर ली है ।

अभिवहन में रोकना

50. **अभिवहन में रोकने का अधिकार** – इस अधिनियम के

उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि जब कि माल का क्रेता दिवालिया हो जाए तब असंदत्त विक्रेता, जिसने माल अपने कब्जे से अलग कर दिया है, माल को अभिवहन से रोक देने का अधिकार रखता है, अर्थात् जब तक माल अभिवहन में रहे वह उस पर फिर कब्जा कर सकेगा और उसे तब तक प्रतिधारित रख सकेगा जब तक कीमत संदत्त या निविदत्त न कर ली जाए ।

51. **अभिवहन की कालावधि** – (1) उस समय से, जब विक्रेता के पास पारेषित किए जाने के प्रयोजन से माल वाहक को या अन्य उपनिहिती को परिदत्त किया जाता है, उस समय तक, जब क्रेता या उसका तन्निमित्त अभिकर्ता उसका परिदान ऐसे वाहक या अन्य उपनिहिती से ले लेता है, माल अभिवहन के अनुक्रम में समझा जाता है ।

(2) यदि क्रेता या उसका तन्निमित्त अभिकर्ता उस माल का परिदान उसके नियत गन्तव्य स्थान पर पहुंचने से पूर्व अभिप्राप्त कर लेता है, तो अभिवहन का अन्त हो जाता है ।

(3) यदि नियत गन्तव्य स्थान पर माल के पहुंचने के पश्चात् वाहक या अन्य उपनिहिती यह बात क्रेता से या उसके अभिकर्ता से अभिस्वीकृत कर ले कि वह माल को क्रेता या उसके अभिकर्ता की ओर से धारण किए हुए है और क्रेता या उसके अभिकर्ता की ओर से उपनिहिती के रूप में उस पर कब्जा बनाए रखे तो अभिवहन का अन्त हो जाता है और यह तत्वहीन है कि क्रेता द्वारा माल के लिए आगे का गन्तव्य स्थान उपदर्शित किया गया हो ।

(4) यदि क्रेता ने माल को प्रतिक्षेपित कर दिया हो, और वाहक या अन्य उपनिहिती उस पर अपना कब्जा बनाए रखे तो, यद्यपि विक्रेता ने उसे वापस लेने से इंकार कर दिया हो, यह नहीं समझा जाता कि अभिवहन का अंत हो गया है ।

(5) जबकि माल का परिदान क्रेता द्वारा भाड़े पर लिए गए पोत को किया जाता है तब यह बात कि माल मास्टर के कब्जे में वाहक के रूप में है या क्रेता के अभिकर्ता के रूप में, एक ऐसा प्रश्न है जो उस विशिष्ट मामले की परिस्थितियों पर अवलम्बित रहता है ।

(6) जहां कि वाहक या अन्य उपनिहिती माल का परिदान क्रेता को या उसके तन्निमित्त अभिकर्ता को करने से इंकार सदोष करता है वहां अभिवहन का अन्त हुआ समझा जाता है ।

(7) जहां कि क्रेता को या उसके तन्निमित्त अभिकर्ता को माल का भागिक परिदान कर दिया गया है वहां शेष माल अभिवहन में रोका जा सकेगा, जब तक कि ऐसा भागिक परिदान ऐसी परिस्थितियों में न किया गया हो जिनसे यह दर्शित होता हो कि सारे माल पर कब्जा छोड़ देने का करार है ।

52. **अभिवहन में रोका कैसे जाता है** – (1) असंदत्त विक्रेता अभिवहन में रोकने के अपने अधिकार का प्रयोग या तो माल पर वास्तविक कब्जा करके या जिस वाहक या अन्य उपनिहिती के कब्जे में माल है उसे अपने दावे की सूचना देकर कर सकेगा । ऐसी सूचना या तो उस व्यक्ति को, जिसका उस माल पर वास्तविक कब्जा है, या उसके मालिक को दी जा सकेगी । पश्चात्कथित दशा में सूचना प्रभावी होने के लिए ऐसे समय पर और ऐसी परिस्थितियों में दी जाएगी कि मालिक युक्तियुक्त तत्परता के प्रयोग द्वारा उसे अपने सेवक या अभिकर्ता को इतना समय रहते संसूचित कर सके कि क्रेता को परिदान निवारित किया जा सके ।

(2) जबकि माल को अभिवहन में रोकने की सूचना माल के वाहक या उस पर कब्जा रखने वाले अन्य उपनिहिती को विक्रेता द्वारा दी जाती है तब वह माल का प्रतिपरिदान विक्रेता को या उसके निदेशानुसार करेगा । ऐसे प्रतिपरिदान के व्यय विक्रेता द्वारा उठाए जाएंगे ।

क्रेता और विक्रेता द्वारा अन्तरण

53. **क्रेता द्वारा अनुविक्रय या गिरवी का प्रभाव** – (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि माल का कोई भी विक्रय या अन्य व्ययन, जो क्रेता ने किया हो, असंदत्त विक्रेता के धारणाधिकार या अभिवहन में रोकने के अधिकार पर प्रभाव नहीं डालता, जब तक कि विक्रेता ने उसके लिए अपनी अनुमति न दे दी हो :

परन्तु जहां कि माल पर हक की दस्तावेज किसी व्यक्ति को उस

माल का क्रेता या स्वामी होने के नाते दी गई है या विधिपूर्वक अन्तरित की गई है और वह व्यक्ति उस दस्तावेज को किसी ऐसे व्यक्ति को अन्तरित कर देता है, जो उस दस्तावेज को सद्भावपूर्वक और प्रतिफलेन लेता है, वहां यदि ऐसा अन्तिम वर्णित अन्तरण विक्रय के रूप में था तो असंदत्त विक्रेता का धारणाधिकार या अभिवहन में रोकने का अधिकार विफल हो जाता है और यदि ऐसा अन्तिम वर्णित अन्तरण गिरवी या अन्य मूल्यार्थ व्ययन के रूप में था तो असंदत्त विक्रेता के धारणाधिकार या अभिवहन में रोकने के अधिकार का प्रयोग उस अन्तरिती के अधिकारों के अध्यधीन ही किया जा सकता है ।

(2) जहां कि अन्तरण गिरवी के रूप में है वहां असंदत्त विक्रेता गिरवीदार से यह अपेक्षा कर सकेगा कि यावत्सम्भव वह गिरवी द्वारा प्रतिभूत रकम की तुष्टि प्रथमतः क्रेता के ऐसे किसी अन्य माल या प्रतिभूतियों से कराए जो गिरवीदार के हाथों में हो और क्रेता के विरुद्ध काम में लाई जा सकती हो ।

54. **धारणाधिकार से या अभिवहन में रोकने से विक्रय का विखंडन साधारणतः नहीं होता** – (1) इस धारा के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि असंदत्त विक्रेता द्वारा अपने धारणाधिकार या अभिवहन में रोकने के अधिकार के प्रयोग मात्र से विक्रय की संविदा का विखण्डन नहीं होता ।

(2) जहां कि माल विनश्वर प्रकृति का है या जहां कि असंदत्त विक्रेता, जिसने अपने धारणाधिकार या अभिवहन में रोकने के अधिकार का प्रयोग किया है, पुनर्विक्रय करने के अपने आशय की सूचना क्रेता को देता है वहां यदि क्रेता युक्तियुक्त समय के अन्दर कीमत संदत्त या निविदत्त नहीं कर देता तो असंदत्त विक्रेता युक्तियुक्त समय के अन्दर माल का पुनर्विक्रय कर सकेगा और उसके संविदा भंग से कारित हानि के लिए मूल विक्रेता से नुकसानी वसूल कर सकेगा, किन्तु क्रेता उस लाभ का हकदार न होगा जो पुनर्विक्रय से हो । यदि ऐसी सूचना नहीं दी जाती है तो असंदत्त विक्रेता ऐसी नुकसानी वसूल करने का हकदार न होगा और क्रेता पुनर्विक्रय पर हुए लाभ का, यदि कोई हो, हकदार होगा ।

(3) जहां कि असंदत्त विक्रेता, जिसने अपने धारणाधिकार का या अभिवहन में रोकने के अधिकार का प्रयोग किया है, माल का पुनर्विक्रय

करता है वहां क्रेता, उस पर मूल क्रेता के विरुद्ध अच्छा हक इस बात के होते हुए भी अर्जित कर लेता है कि मूल क्रेता को पुनर्विक्रय की कोई सूचना नहीं दी गई है ।

(4) जहां कि विक्रेता यह अधिकार अभिव्यक्ततः आरक्षित कर लेता है कि यदि क्रेता व्यतिक्रम करे तो पुनर्विक्रय किया जा सकेगा और क्रेता के व्यतिक्रम करने पर माल का पुनर्विक्रय कर देता है वहां मूल विक्रय संविदा का तद्द्वारा विखंडन हो जाता है किन्तु उससे विक्रेता के किसी ऐसे दावे पर, जो वह नुकसानी के लिए रखता हो, प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता ।

अध्याय 6

संविदा-भंग के लिए वाद

55. **कीमत के लिए वाद** – (1) जहां कि विक्रय की संविदा के अधीन माल में की सम्पत्ति क्रेता को संक्रान्त हो गई है और क्रेता संविदा के निबन्धनों के अनुसार उस माल का संदाय करने की उपेक्षा या करने से इंकार सदोष करता है वहां विक्रेता माल की कीमत के लिए उसके विरुद्ध वाद ला सकेगा ।

(2) जहां कि विक्रय की संविदा के अधीन कीमत, इस बात को दृष्टि में लाए बिना कि परिदान हुआ है या नहीं, किसी निश्चित दिन को देय हो, और क्रेता ऐसी कीमत का संदाय करने की उपेक्षा या करने से इंकार सदोष करता है वहां विक्रेता कीमत के लिए उसके विरुद्ध वाद ला सकेगा, यद्यपि माल में की संपत्ति संक्रान्त न हुई हो और वह माल संविदा मद्दे विनियोजित न किया गया हो ।

56. **अप्रतिग्रहण के लिए नुकसानी** - जहां कि क्रेता माल का प्रतिग्रहण और उसके लिए संदाय करने की उपेक्षा या करने से इंकार सदोष करता है वहां विक्रेता अप्रतिग्रहण के लिए नुकसानी का वाद उसके विरुद्ध ला सकेगा ।

57. **अपरिदान के लिए नुकसानी** – जहां कि विक्रेता माल का परिदान क्रेता को करने की उपेक्षा या करने से इंकार सदोष करता है वहां क्रेता अपरिदान के लिए नुकसानी का वाद विक्रेता के विरुद्ध ला सकेगा ।

58. **विनिर्दिष्ट पालन** – विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 (1877 का 1) के अध्याय 2 के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि विनिर्दिष्ट या अभिनिश्चित माल के परिदान की संविदा के भंग के किसी वाद में न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, वादी के आवेदन पर अपनी डिक्री द्वारा प्रतिवादी को, यह विकल्प दिए बिना कि वह नुकसानी देकर माल को प्रतिधारित रखे, यह निदेश दे सकेगा कि संविदा का पालन विनिर्दिष्टतः किया जाए । डिक्री अशर्त हो सकेगी अथवा नुकसानी या कीमत के संदाय विषयक या अन्यथा ऐसे निबन्धनों और शर्तों सहित हो सकेगी जिन्हें न्यायालय न्यायसंगत समझे, और वादी द्वारा आवेदन डिक्री से पूर्व किसी समय भी किया जा सकेगा ।

59. **वारंटी के भंग का उपचार** – (1) जहां कि वारंटी का भंग विक्रेता द्वारा किया जाता है या जहां कि क्रेता यह निर्वाचन करता है या ऐसा मानने के लिए विवश हो जाता है कि विक्रेता पक्ष से जो शर्त का भंग हुआ है वह वारण्टी का भंग है, वहां क्रेता वारण्टी के ऐसे भंग के कारण ही उस माल को प्रतिक्षेपित करने का हकदार नहीं हो जाता, किन्तु वह –

(क) वारण्टी के भंग की कीमत कम या निर्वापित कराने में विक्रेता के विरुद्ध रख सकेगा; अथवा

(ख) वारण्टी के भंग के लिए विक्रेता के विरुद्ध नुकसानी का वाद ला सकेगा ।

(2) यह तथ्य कि क्रेता ने वारण्टी के भंग को कीमत कम या निर्वापित कराने में रखा है वारण्टी के उसी भंग के लिए वाद लाने से उसे निवारित नहीं करता यदि उसे अतिरिक्त नुकसान उठाना पड़ा हो ।

60. **सम्यक् तारीख से पूर्व संविदा का निराकरण** – जहां कि विक्रय की संविदा के पक्षकारों में से कोई सा भी पक्षकार परिदान की तारीख से पूर्व उस संविदा का निराकरण कर देता है वहां दूसरा पक्षकार या तो यह मान सकेगा कि संविदा अस्तित्व में बनी हुई है और परिदान की तारीख तक प्रतीक्षा कर सकेगा या संविदा को विखंडित मान सकेगा और उस भंग के लिए वाद ला सकेगा ।

61. **नुकसानी के तौर पर ब्याज और विशेष नुकसानी** – (1) उस दशा में, जिसमें ब्याज या विशेष नुकसानी विधि द्वारा वसूलीय हो, ब्याज या विशेष नुकसानी को, अथवा जहां कि धन के संदाय का जो प्रतिफल था वह निष्फल हो गया है, दिए हुए धन को, वसूल करने के विक्रेता या क्रेता के अधिकार पर इस अधिनियम की कोई भी बात प्रभाव न डालेगी ।

(2) तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में न्यायालय कीमत की रकम पर ऐसी दर से जिसे वह ठीक समझे ब्याज –

(क) विक्रेता को उस वाद में, जो उसने कीमत के लिए किया है माल की निविदा की तारीख से या उस तारीख से जिस तारीख को कीमत संदेय थी, अधिनिर्णीत कर सकेगा;

(ख) क्रेता को उस वाद में, जो उसने विक्रेता की तरफ से संविदा-भंग की दशा में कीमत के प्रतिदान के लिए किया है, उस तारीख से अधिनिर्णीत कर सकेगा जिस तारीख को कीमत का संदाय किया गया था ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

62. **विवक्षित निबन्धनों और शर्तों का अपवर्जन** – जहां कि विधि की विवक्षा से कोई अधिकार, कर्तव्य या दायित्व विक्रय की संविदा के अधीन उद्भूत होता हो वहां अभिव्यक्त करार द्वारा या पक्षकारों के बीच की व्यवहार-चर्या द्वारा या प्रथा द्वारा, यदि प्रथा ऐसी हो जो संविदा के दोनों पक्षकारों पर आबद्धकर हो, उसका नकार या उसमें फेरफार किया जा सकेगा ।

63. **युक्तियुक्त समय तथ्य का प्रश्न है** – जहां कि इस अधिनियम में युक्तियुक्त समय के प्रति कोई निर्देश किया गया है वहां युक्तियुक्त समय क्या है, यह तथ्य का प्रश्न है ।

64. **नीलाम विक्रय** – नीलाम द्वारा विक्रय की दशा में –

(1) जहां कि माल लाटों में विक्रय के लिए रखा जाता है वहां हर एक लाट के बारे में प्रथमदृष्ट्या यह समझा जाता है कि वह

विक्रय की एक पृथक् संविदा का विषय है ;

(2) वह विक्रय तब पूर्ण हो जाता है जब नीलामकर्ता उसका पूर्ण होना धनपात द्वारा या अन्य रूढ़िक प्रकार से आख्यापित करता है और जब तक ऐसा आख्यापन न किया जाए कोई भी बोली लगाने वाला अपनी बोली वापस ले सकेगा ;

(3) बोली लगाने का अधिकार विक्रेता द्वारा या उसकी ओर से अभिव्यक्ततः आरक्षित रखा जा सकेगा और जहां कि ऐसा अधिकार अभिव्यक्ततः आरक्षित रखा जाता है, किन्तु अन्यथा नहीं, विक्रेता या उसकी ओर से कोई एक व्यक्ति नीलाम में बोली एतस्मिन्पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अध्यधीन लगा सकेगा ;

(4) जहां कि विक्रय का विक्रेता की ओर से बोली लगाने के अधिकार के अध्यधीन होना अधिसूचित नहीं है वहां ऐसे विक्रय में स्वयं बोली लगाना या किसी व्यक्ति को बोली लगाने के लिए नियोजित करना विक्रेता के लिए विधिपूर्ण न होगा, और न नीलामकर्ता के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह विक्रेता से या ऐसे किसी व्यक्ति से कोई बोली जानते हुए ले, और इस नियम के उल्लंघनकारी विक्रय को क्रेता कपटपूर्ण मान सकेगा ।

(5) विक्रय का किसी आरक्षित कीमत या अपसेट कीमत के अध्यधीन होना अधिसूचित किया जा सकेगा ;

(6) यदि विक्रेता अपदेशी बोली का प्रयोग कीमत बढ़ाने के लिए करता है तो विक्रय क्रेता के विकल्प पर शून्यकरणीय है ।

[1][64क. **वर्धित या कम किए गए करों की रकम का विक्रय की संविदाओं में जोड़ा या घटाया जाना** – (1) जब तक कि संविदा के निबन्धनों से भिन्न आशय प्रतीत न हो, किसी माल की बाबत उपधारा (2) में वर्णित प्रकृति का कोई कर ऐसे माल के विक्रय या क्रय के लिए, वहां पर जहां कि संविदा के किए जाने के समय कर प्रभार्य नहीं था, कर के संदाय के बारे में किसी अनुबन्ध के बिना, या वहां पर जहां कि उस समय कर प्रभार्य था, ऐसे माल के दत्त-कर विक्रय या क्रय के लिए,

---

[1] 1963 के अधिनियम सं. 33 की धारा 5 द्वारा धारा 64क के स्थान पर प्रतिस्थापित । यह धारा 1940 के अधिनियम सं. 41 की धारा 2 द्वारा अन्तःस्थापित की गई थी ।

कोई संविदा की जाने के पश्चात् अधिरोपित, वर्धित, कम या परिहृत किए जाने की दशा में –

(क) यदि ऐसा अधिरोपण या वर्धन इस प्रकार प्रभाव में आता है कि, यथास्थिति, कर या वर्धित कर या ऐसे कर का कोई भाग संदत्त किया जाता है या संदेय है तो विक्रेता संविदा-कीमत में उतनी रकम जोड़ सकेगा जितनी ऐसे कर या कर की वृद्धि की बाबत संदत्त या संदेय रकम के बराबर हो और ऐसी जोड़ी गई रकम अपने को संदत्त किए जाने का तथा वह उस रकम के लिए वाद लाने और उसे वसूल करने का हकदार होगा ; तथा

(ख) यदि ऐसी कमी या परिहार इस प्रकार प्रभाव में आता है कि, यथास्थिति, केवल कम किया गया कर संदत्त किया जाता है या संदेय है या कोई भी कर संदत्त किया गया है, न संदेय है तो क्रेता संविदा कीमत में से उतनी रकम काट सकेगा जितनी कर की कमी या परिहृत कर के बराबर हो और ऐसी कटौती के लिए या की बाबत संदाय करने का वह दायी न होगा और न उस पर वाद लाया जा सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबन्ध निम्नलिखित करों को लागू होते हैं, अर्थात् :-

(क) माल पर कोई भी सीमाशुल्क या उत्पाद-शुल्क ;

(ख) माल के विक्रय या क्रय पर कोई भी कर ।]

65. **[निरसन ।]** – निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

66. **व्यावृत्तियां** – (1) इस अधिनियम या एतद्द्वारा किए गए किसी भी निरसन में की कोई भी बात निम्नलिखित पर न तो प्रभाव डालेगी और न प्रभाव डालने वाली समझी जाएगी –

(क) इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व अर्जित, प्रोद्भूत या उपगत कोई भी अधिकार, हक, हित, बाध्यता या दायित्व ; अथवा

(ख) ऐसे किसी अधिकार, हक, हित, बाध्यता या दायित्व के विषय में कोई वैध कार्यवाहियां या उपचार ; अथवा

(ग) इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व की गई या सहन की गई कोई भी बात ; अथवा

(घ) माल के विक्रय से संबंधित ऐसी कोई भी अधिनियमिति, जो इस अधिनियम द्वारा अभिव्यक्ततः निरसित नहीं की गई है ; अथवा

(ङ) विधि का ऐसा कोई भी नियम जो इस अधिनियम से असंगत नहीं है ।

(2) दिवाला विषयक नियम, जो माल के विक्रय की संविदाओं से संबंधित हों इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, उन्हें लागू बने रहेंगे ।

(3) विक्रय की संविदाओं से संबंधित इस अधिनियम के उपबंध विक्रय की संविदा के रूप में किसी ऐसे संव्यवहार को लागू नहीं हैं जो बन्धक, गिरवी, भार या अन्य प्रतिभूति के तौर पर प्रवर्तित होने के लिए आशयित हों ।

Cover iii

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

cover iv

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/ product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in